नयी कविता

विश्वम्भर 'मानव'

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण,
१६५७

चार रुपया

मुद्रक : राम आसरे कक्कड़
हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

स्नेह जी को

जिनके लिए आँसू मेरी आँखों में ही सूख गये

प्रेरणा

नयी कविता में परंपरा और विद्रोह दोना के स्वर पाये जाते हैं। नये गीति-काव्य में जहाँ थोड़े परिवर्तनों के साथ बीसवीं शताब्दी में प्रचलित गीति-काव्य का ही विकास लक्षित होता है, वहाँ प्रगतिवादियों और प्रयोगवादियों दोनों ने पिछले छायावादी-काव्य के विरुद्ध विद्रोह करके प्रचलित मान्यताओं में आमूल परिवर्तन कर दिखाया है।

नयी कविता पर लिखनेवाले हिंदी में कई प्रकार के आलोचक पाये जाते हैं। पहले परंपरावादी। ये प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनो को सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देखते। इनका स्वभाव है कि जब तक व्यक्ति स्वयं इतना प्रसिद्ध नहीं हो जाता कि ये उसके संबध में कुछ कहने को बाध्य हो, तब तक ये उसकी ओर ध्यान नहीं देते। नये काव्य के सामान्य लक्षणों का संक्षिप्त-सा विवेचन करके ये चुप रह गए हैं। दूसरे हैं प्रगतिवादी आचोचक। इन्होंने अपने वर्ग के कवियों की असंयत प्रशंसा के साथ अपने विरोधियों की अकारण निंदा की है। प्रयोगवाद के अपने पृथक् आलोचक नहीं हैं। उनके कुछ प्रमुख कवि ही समीक्षा का काम भी सँभालते हैं। इन्होंने यह प्रचारित करने का प्रयत्न किया है कि प्रगतिवादी कविता मर गई और नयी कविता का अर्थ है मात्र प्रयोगवादी रचनाएँ। काव्य के पाठक जानते हैं कि ये दोनों ही बातें तथ्य से दूर हैं। आज प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों के प्रचार के लिए अलग-अलग पत्रिकाएँ निकल रही हैं और आए दिन जो काव्य-संकलन प्रकाशित होते रहते हैं। उनके पीछे भी कुछ ऐसी ही प्रेरणा काम करती दिखाई देती है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि सभी कोटि के आलोचको ने नये गीतिकारों की उपेक्षा की है। काव्य के पवित्र क्षेत्र में इस संकीर्णता और इस अनौचित्य को देख कर ही इस समीक्षा-ग्रंथ को प्रस्तुत करने की मेरी इच्छा हुई।

नयी कविता अभी विकास के पथ पर है; अतः उसके संबंध में अंतिम बात नहीं कही जा सकती। जो कुछ कहा गया है, उससे भी सब सहमत हों ऐसी आशा मैं नहीं करता। जीवन में मतभेद की संभावना सदैव बनी रहती है। जिन कवियो के काव्य पर इस ग्रंथ में विचार किया गया है, उन्हें छोड़ कर ध्यान देने योग्य कवि हिंदी में और नहीं हैं, यह दावा भी नहीं किया जा सकता। लेकिन सभी धाराओं के कवियों में से बहुत महत्वपूर्ण कोई नाम न छूटने पावे, इस बात का ध्यान रखा गया है। बहुत-से ऐसे नये कवियों से मेरा व्यक्तिगत परिचय है, जिन पर इस ग्रंथ में विचार नहीं किया जा सका। उनमें से अधिकांश के काव्य में कोई विशेष बात नहीं है। वे अधिकतर अनुकरण करते हैं। फिर भी थोड़े-से कवियो को और लेने की मेरी इच्छा थी। बहुत संभव है भविष्य में इनके सबंध में मैं कुछ कह सकूं। पर अनेक बार आग्रह करने पर भी इनमें से कई कवियो की रचनाएँ मैं नहीं पा सका; अतः इस दिशा में मेरा अपराध बहुत कम है। यो उन्हें न लेने पर भी इस कृति के मूल उद्देश्य को कोई क्षति नहीं पहुँचती। फिर भी एक बात कहने को मन करता है। आज जब कि कविताओं की पुस्तकें कम प्रकाशित होती हैं, कवियों का यह धर्म है कि आवश्यकता पड़ने पर वे आलोचकों के साथ सहयोग करें।

—विश्वम्भर 'मानव'

क्रम

नयो दिशा

कविता का कैसा ही युग हो, उसमें कई प्रकार के साहित्यकार और साहित्यानुरागी पाए जाते है। एक ऐसे, जिन्हें यह चेतना ही नहीं होती कि नया युग आया है; अतः जिस युग में वे अब तक जीवित रहे हैं, उसी में अन्तिम साँस लेते रहते हैं। दूसरे ऐसे, जिन्हें यह चेतना तो होती है कि नए ढंग की रचनाएं हो रही है; पर उनकी सहानुभूति उस नव सृजन-शक्ति को नहीं मिल पाती। तीसरे ऐसे, जो नवीन के सम्पर्क में आते हैं, उसमें से थोड़ा बहुत उन्हें अच्छा लगता है, अधिकांश नहीं। पर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनकी दृष्टि यह पहचान लेती है कि पिछला युग अब समाप्त हो गया और उसे पुनर्जीवित करना असम्भव है। ऐसे ही भावनाशील नवयुवकों में से नई प्रतिभाएं उभरती हैं जो नए युग का निर्माण करती हैं।

इस प्रकार नयी कविता की उपेक्षा भी होती हैं, विरोध भी, सम्मान भी। इन सारी बातों का प्रभाव कविता पर पड़ता है। उपेक्षा होती है प्राचीन संस्कारों से शासित होने के कारण। आज भी ऐसे कवियों की कमी नहीं है जो प्राचीन विषयों पर कवित्त-सवैयों में लिखते हैं और अकेले या छोटी-मोटी मंडली बनाकर रहते हैं और उसी को बहुत बड़ा संसार समझते हैं और इसके बाहर क्या है इस ओर ध्यान ही नहीं देते। विरोध कई प्रकार के व्यक्तियों द्वारा होता है। प्राचीन पंथी विरोध करते हैं नासमझी के कारण। पर अधिकतर विरोध होता है अपने से ठीक पिछले युग के कवियों और काव्य-प्रेमियों द्वारा। यह विरोध प्रायः ईर्ष्या के कारण होता है जिसका प्रभाव धीरे-धीरे क्षीण होता चला जाता है। पर एक विरोध सद्भावना से प्रेरित होकर भी हो सकता है। फिर भी विरोध विरोध ही है। आगे चलकर कोई कवि चाहे कितना ही बड़ा हो जाय, प्रारम्भ में वह

सहानुभूति, स्नेह और प्रोत्साहन का ही भूखा होता है और ये उसे मिलने भी चाहिए।

सन् १९३५ से इधर का युग प्रगतिवाद-युग कहलाता है। इससे पहले छायावाद युग समाप्त होता है। छायावाद के चार बड़े प्रहरी जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, निराला और महादेवी हैं। रामकुमार इनसे थोड़े उतर कर इन्हीं की कोटि में आते हैं। इस युग में काम करने वाले और भी कुछ महत्वपूर्ण कवि हैं जो थोड़े भिन्न पथ का अनुसरण करते रहे। इनमें हम भगवतीचरण वर्मा, दिनकर, बालकृष्णशर्मा नवीन, गुरुभक्तसिंह आदि के नाम ले सकते हैं। लेकिन नए युग और छायावाद युग के बीच की एक कड़ी और है जिसे हम उत्तर-छायावाद-काल कह सकते हैं। इस अवधि में यह स्पष्ट हो गया था कि पुराना युग अब समाप्त होने वाला है। इसमें काम करने वाले कवि हैं बच्चन, नरेन्द्र और अंचल आदि। ये तीनों ही छायावाद को प्रगतिवाद की सीमा-रेखा से जोड़ते हैं। कोई भी युग सहसा प्रारम्भ नहीं हो जाता। प्रत्येक युग में कुछ कवि ऐसे अवश्य होते हैं जो पिछले युग के प्रभावों से धीरे-धीरे मुक्त होकर आगे आने वाले कवियों के लिये नई भावना-भूमि तैयार करते हैं। ये पिछले तीनों कवि ऐसी ही भूमि और भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

जैसे छायावाद-युग के सम्बन्ध में यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि उसमें केवल प्रकृति में चेतना का आरोप करने वाले कवि रहते थे, उसी प्रकार प्रगतिवाद-युग के सम्बन्ध में भी इस धोखे में नहीं रहना चाहिए कि इसमें केवल साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करने वाले कवि होंगे। किसी भी युग मे काम करने वाले अनेक रुचियों के कवि रहते हैं। इससे भिन्न रुचि वाले कवियों का महत्व कम नहीं हो जाता।

नयी कविता का जो वास्तविक रूप अब तक पाठकों के सामने नहीं आ पाया, उसमें दलगत भावना का बहुत बड़ा हाथ है जिसे यहाँ स्पष्ट कर देना उचित होगा। प्राचीन काल के लोग अपनी साधना के बल पर ही जीते थे, पर आज का कवि प्रचार के बल पर भी जीता है। यह प्रचार

जान बूझ कर भी होता है और अनजाने भी। इसी प्रचार के कारण आज के पाठक को यह विश्वास हो गया है कि आजकल केवल दो वाद काम कर रहे है—प्रगतिवाद और प्रयोगवाद—और इन वादों के बाहर कविता हो ही नही रही है। पर पूरा सत्य यह नहीं है। क्योंकि अभी तक नए कवियों की बहुत कम रचनाएँ पुस्तक रूप में प्रकाश में आई हैं, अतः हमारे आलोचकों ने जो कह दिया, वही हमारे भोले पाठको ने स्वीकार कर लिया। पहला भ्रम फैलाया प्रगतिवादी आलोचकों ने। प्रगतिवादी आलोचक न केवल अपने पक्ष के कवि की अतिशय प्रशंसा करते हैं, वरन् दूसरे पक्ष के कवि को दबाने, उसके यश को ढकने और उसे महत्वहीन मानकर उसका तिरस्कार करने का प्रयत्न भी करते रहते है। शिवदानसिंह चौहान के लिए तो मैं अभी नही कह सकता, पर प्रगतिवाद के दो प्रमुख आलोचक डा० रामविलास शर्मा और प्रकाशचंद्र गुप्त जीवन भर यही काम करते रहे हैं। इधर अमृतराय, नामवरसिंह और रामेश्वर शर्मा भी, जैसा टूटा फूटा वे लिख सकते हैं, डा० रामविलास और गुप्त जी के अधूरे काम को आगे बढ़ाने के प्रयत्न में है। प्रगतिवादी कवियो को और कुछ नहीं तो एक लाभ तो अवश्य ही है और वह यह कि इधर उनकी दो-चार रचनाएँ प्रकाशित हुई नहीं, उधर चट से उनकी प्रतिभा का विरुद गाने वाले आलोचक उन्हें मिल जाते हैं।

कुछ हानि पहुँचायी प्रयोगवाद के प्रचार ने भी। यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि दोनो सप्तकों को प्रकाशित कर कुछ नए कवियो और नई कविता को प्रकाश में लाने का बहुत ही महत्वपूर्ण काम अज्ञेय जी ने किया, पर इसके उपरांत लोगों की धारणा यह हो चली कि केवल इतनी और इस प्रकार की कविता ही नई कविता है और तब इसी का समर्थन या विरोध होने लगा। यह समझा जाने लगा कि या तो आज का कवि प्रगतिवादी है या फिर प्रयोगवादी। यों अज्ञेय जी को इसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। दोष है उन आलोचकों का जो अपनी सहानुभूति इन वादो के बाहर काम करने वाले कवियों को दे ही नहीं सके।

यह तो सभी जानते हैं कि भक्ति-काल में पद रचना की परम्परा के समान ही बीसवीं शताब्दी मे गीति-काव्य की एक परंपरा प्रारम्भ हुई थी। इसका पूर्ण विकास छायावाद काल में हुआ। पर यह परंपरा आज भी समाप्त नहीं हुई। नए वेग, नए रस और नवीन लहरियाँ उठाती हुई यह धारा बढती ही चली जा रही है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दो शब्दों के प्रचार से जिन कवियो को प्रकाश में आने का सबसे कम अवसर मिला, वे इसी परंपरा की नई पीढी के कवि हैं। प्रगतिवादियों में जैसे हम नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नेमिचंद्र जैन आदि के नाम ले सकते हैं, प्रयोगवादियो में अज्ञेय, गिरिजाकुमार, शमशेर बहादुरसिंह आदि के, उसी प्रकार नए गीतिकाव्यकारों में विद्यावती कोकिल, सुमित्रा-कुमारी सिनहा, शांति मेहरोत्रा, हंसकुमार तिवारी, गिरिधर गोपाल, रमानाथ अवस्थी, जगदीश गुप्त, शिवचद्र नागर, चन्द्रमुखी ओझा सुधा आदि कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। प्रगतिवादियो और प्रयोगवादियों से इन कवियों की संख्या वैसे कहीं अधिक है और इस समुदाय के कवि उपरोक्त दोनो दलों के कवियों से कम प्रतिभाशाली भी नहीं हैं। न्याय की बात तो यह थी कि पिछले पन्द्रह-बीस वर्ष की कविता के इस युग (सन् १९३५—) का नाम इन्हीं कवियों के कर्म को दृष्टि में रखकर पड़ना चाहिये था। पर युग का नाम विशेष कारणों से कभी किसी बड़े साहित्यकार और कभी किसी भावधारा या विचार-परंपरा के आधार पर यों ही पड़ जाता है और वह एक अलग बात है।

इस प्रकार इस युग में तीन प्रकार के कवि पाए जाते हैं।

१. प्रगतिवादी

२. नए गीतिकार

३. प्रयोगवादी

आज जहाँ हम हैं, वहाँ खड़े होकर ही आज की कविता को हम नयी कविता कहते है। आज से सौ वर्ष बाद यही कविता पुरानी हो जायगी। किसी समय वीर रस, भक्ति और शृंगार की रचनाएँ भी नयी

कविता कही जाती होगी, पर आज वह समस्त साहित्य प्राचीन-काव्य कहलाता है। अभी तो सन् १८५० से इधर के काव्य को ही आधुनिक काव्य कहते हैं। उसमें भी सन् १९३५ से इधर की कविता को नयी कविता। ध्यान से देखें तो पिछले आधुनिक-काव्य से यह नयी कविता कई बातों में भिन्न है। आधुनिक-काव्य में रहस्य-भावना का प्राधान्य था। यह रहस्यभावना एक प्रकार से युग की परिस्थितियों के अनुकुल प्राचीन निर्गुण-उपासना का ही नया संस्करण थी। इसके कारण व्यक्ति ससार से खिचकर किसी अलौकिक शक्ति को आत्म-समर्पण करने में जीवन की सार्थकता समझता था। इसी से कुछ लोगों ने इसे पलायनवाद का नाम भी दिया। इसमें संदेह नहीं कि इस भावना के कारण काव्य के क्षेत्र में कुछ अत्यन्त पवित्र, सूक्ष्म और कोमल भावनाओं को जन्म मिला, पर अधिकतर भावनाएँ वायवी, काल्पनिक और दुरूह भी हैं। पाठक उन्हें न ग्रहण कर पाता है, न समझ पाता है, न उनसे प्रभावित हो पाता है। इसके विपरीत नयी कविता में ससार को ठोस मानकर और उसे सत्य एवं महत्वपूर्ण समझकर जीवन को सुखी और सुन्दर बनाने पर बल दिया गया। इसके लिए सबसे बड़ी प्रेरणा मिली मार्क्स के जीवन-दर्शन से, जिसे साम्यवाद कहते हैं। यही साम्यवाद कविता में प्रगतिवाद बन जाता है। यह एक प्रकार से अध्यात्मवाद का विरोधी वाद है। झगड़ा मिटाने के लिए कुछ विद्वानों और साहित्यकारों के ऐसे प्रयत्न भी अभी चल रहे हैं कि इन दोनों वादों को एक दूसरे का पूरक मान लिया जाय, पर समझौते की यह बात कट्टरपंथियों द्वारा मान्य घोषित नहीं हुई। छायावाद के प्रति भी अब वह ललक नहीं रह गई। छायावाद उस प्रवृत्ति का नाम है जिसमें प्रकृति को चेतन स्वीकार किया जाता है। यह प्रवृत्ति भी सच पूछिए तो रहस्यवृत्ति के कारण ही उत्पन्न हुई थी। प्रकृति की आत्मा को पहचानना छायावाद था। रहस्यवाद में जैसे आत्मा-परमात्मा, जीवन में जैसे प्रेमी-प्रेमिका, छायावाद में वैसे ही प्राकृतिक वस्तुओं में एक दूसरे के प्रति आकर्षण की स्वीकृति थी। यह आकर्षण उस समय तक सिद्ध नहीं हो

सकता था, जब तक प्रकृति को चेतन न मान लिया जाय। अतः छाया-वाद प्रकृति को चेतना-सम्पन्न मानने का दूसरा नाम हुआ। यह तो फिर भी स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रकृति के प्रति कवियों के दृष्टिकोणों में यह सबसे विकसित दृष्टिकोण है। नए युग में जब अध्यात्म-भावना शिथिल हुई और रहस्यवाद का प्रचलन कम हुआ तो स्वाभाविक था कि छायावाद की भावना को भी आघात पहुँचता। आज का कवि संसार के साथ प्रकृति को भी अपने सहज और भौतिक विकास में देखता हुआ भावना के नए सम्बन्ध जोड़ रहा है, यहाँ तक कि वह उन तिरस्कृत, भद्दे और कुरूप रूपों पर भी दृष्टि डाल रहा है जो छायावादी कवि की कल्पना की कोमल और सुरुचिपूर्ण परिधि में कभी आ ही नहीं सकते थे। राष्ट्रीय-भावना भी जिस रूप में पहले ग्रहण होती थी, अब नहीं होती। सन् १९४७ के उपरांत तो वह भावना समाप्त ही हो गई। पहले विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष करने, स्वतन्त्रता के लिए बडे से बड़े बलिदान के लिए कटिबद्ध रहने एव मा की जजीरें तोड़ने के जो स्वर सुनाई देते थे, अब क्षीण पड़ गए हैं। जेल-जीवन ने भी बहुत सी मार्मिक रचनाएँ उस समय हिन्दी को दीं। न जाने कितने प्रयाण-गीत लिखे गए। देश के स्वतन्त्र होने से इन सबको अब वैसा अवकाश नहीं रहा। ऐसी रचनाओं की गणना अब सामयिक रचनाओं में होती है और उस वातावरण से हटा कर उन्हें पढ़ने में अब वैसा आनंद नहीं आता जैसा कभी आता था। देश-भक्ति का तो अब रूप ही जैसे बदल गया है। इतना होने पर भी स्व-शासन के गीत गाए जाते हों, ऐसा भी नहीं है। किसी भी देश के कवि इतने स्वतन्त्र-चेता तो अवश्य होते हैं कि अन्ध आवेश में या आँख मींचकर वे किसी की प्रशंसा न करें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि महात्मा गांधी के कर्मो और बलिदान के प्रति लोगो में अब भी अनुराग शेष है और आए दिन उन पर रचनाएँ होती रहती हैं, पर उनके अनुयायियों की प्रशंसा में कुछ नहीं लिखा जाता। वर्तमान शासन के प्रति एक प्रकार की असंतोष की भावना ही लोगों में धीरे-धीरे बढ़ रही है। भारत में यदि किसी नए

व्यक्तित्व के प्रति सम्मान जगा है तो वह भूदान यज्ञ के प्रणेता आचार्य विनोबा भावे के प्रति। पर उनके प्रति भी श्रद्धा अभी पिछले युगों के कवियों जैसे मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त एवं बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि द्वारा ही अधिक व्यक्त हुई है। हालावाद की ध्वनि अब शांत हो गई है। उस मादकता के पीछे विदेशी प्रभाव था जिसे हिन्दी वाले अधिक नहीं पचा सके। उसका अनुकरण भी इसी से कहीं नहीं हुआ, यहाँ तक कि उसके प्रस्तावक बच्चन ने भी अब उससे अपना पीछा छुड़ा लिया है। नई कविता को आज अन्य दो विदेशी मनीषियों ने प्रभावित कर रखा है—पहले हैं मार्क्स जिनके नाम पर प्रगतिवाद का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और दूसरे हैं फ्रायड जिन्होंने बहुत अंशों तक प्रयोगवाद को आच्छादित कर रखा है।

नयी कविता नयी परिस्थितियों की उपज है। देश की राजनीतिक स्थिति बदल गई। भारत स्वतन्त्र हो गया है और अंतर्राष्ट्रीय आधार पर उसे सम्मान प्राप्त हुआ है। अतः हमारे कवियों की वाणी में अब दीनता नहीं सुनाई पड़ती। राष्ट्रीय पताका, स्वतन्त्रता और देश के गौरव को लेकर बहुत सी रचनाएँ भी इधर लिखी गई हैं। रहस्यवाद के रूप में जो रही-सही अध्यात्म-भावना चल रही थी, वह समाप्त हो गई है। पुराने छायावादी कवियों में नवचेतनावाद के रूप में अरविंदवाद विकसित हुआ है, पर नए कवि अध्यात्म और धर्म की बिल्कुल चिन्ता करते नहीं दिखायी देते। धार्मिक और अध्यात्म-भावना क्षीण होने का एक बहुत बड़ा कारण मार्क्स-दर्शन का बढ़ता प्रभाव है। पिछले कवियों की अपेक्षा नए कवि सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति अधिक सजग प्रतीत होते हैं। कविता में सामाजिक-तत्त्व अब अधिक उभर कर आ रहा है। सामाजिक-कल्याण की ओर जो हमारे कवि उन्मुख हुए हैं उसके मूल में भी अधिकांश रूप से मार्क्सवाद है। सामाजिकता की यह चेतना वर्ग-संघर्ष के रूप में प्रायः आई है। आज की अर्थ-विषमता तो किसी से छिपी नहीं है। आज मध्य वर्ग विशेष रूप से संकट-ग्रस्त, चिंतित और क्षुब्ध है। भीतर से वह टूटा

हुआ है। हमारे अधिकतर कवि इसी मध्यवर्ग से आते हैं, अतः उनकी वाणी में इस चिंता, क्षोभ और टूटने के स्वर स्पष्ट सुनाई देते हैं। कुछ जिनके ऊपर मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ गया है—और ऐसी दशा में यह प्रभाव पड़ना बहुत स्वाभाविक है—वर्ग-संघर्ष की बात करने लगे हैं। अतः छायावादी कवियों का वेदनावाद तो इनमें नहीं पाया जाता, पर हताश (frustrated) ये अवश्य प्रतीत होते हैं। इस हताश-भावना ने हमारे काव्य को पिछले एक हजार वर्षों से भी ऐसा कभी आच्छादित नहीं किया था जैसे अब। क्योंकि भारत में स्वयं मध्यवर्ग अभी तक डाँवाडोल स्थिति में है, ऐसी दशा में उस वर्ग से आये कवियों से यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे कोई स्पष्ट मार्ग दिखला सकेंगे। नई कविता में मनोवैज्ञानिकता बढ़ रही है। कुछ फ्रायड और कुछ विदेशी कवियों के अध्ययन के प्रभाव से प्रतीकवाद से लेकर अति-यथार्थवाद तक कविता में प्रवेश पा गए हैं। इस अंतिम वाद का प्रभाव अंधानुकरण के रूप में ही अभी चल रहा है। आज मार्क्स ने जीवन की धूलिभरी धरती पर दौड़ाकर बाह्य पक्ष को जितना विस्तार दिया हैं, फ्रायड ने मन की अनंत गहराई में उतार कर उतना ही भावना की जटिलता में हमारे कवियों की प्रतिभा को उलझा दिया है।

इस प्रकार नए कवि एक सर्वथा नए युग की भावनाओं को जन्म दे रहे हैं। संसार, समाज, ईश्वर, प्रकृति और व्यक्ति सभी के प्रति उनका दृष्टिकोण हम बदला हुआ पाते हैं। कविता अब धरती के अधिक निकट आ गई है। भावुकता का ह्रास और बौद्धिकता का विकास हो रहा है। एक प्रकार का सन्देहवाद भी इन कवियों में जन्म ले रहा है। प्राचीन मान्यताएं टूट-फूट रही हैं और वस्तुओं के अंतिम मूल्य जैसे अभी निर्धारित नहीं हुए हैं। देश, जाति और वर्ग से ऊपर उठकर समष्टिवाद का परिचय इन कवियों ने दिया है। साथ ही एक प्रकार का भयंकर व्यक्तिवाद भी इनमें उभर रहा है।

कला के सम्बन्ध में ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसका काव्य-वस्तु

से गहरा सम्बन्ध हो। इसी से अभिव्यक्ति कहीं दुरूह और धुँधली, कहीं सांकेतिक और रसमयी, कहीं सहज और स्पष्ट मिलती है। कुल मिलाकर कला सरल हो गयी है—कहीं-कहीं इतनी सरल कि साधारण प्रतीत होती है। मुक्त छंद को नई गरिमा मिली है। रस-विरोधी वर्णन कहीं-कही मिलते हैं। रस की अपेक्षा प्रभाव उत्पन्न करने की चिंता अब कवियों को अधिक है। नए उपमान, नए प्रतीक, नई काव्य-भंगिमाओं की खोज में आज का कवि आकाश-पाताल के बीच आकुल दौड़ लगा रहा है।

दुर्भाग्य से इस युग में हमारे पास कोई ऐसा बड़ा नाम नहीं है जैसे द्विवेदी-युग में मैथिलीशरण गुप्त या छायावाद-युग में प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी का। फिर भी यदि किसी पर हम थोड़ा-बहुत गर्व कर सकते हैं, तो वह अज्ञेय का नाम है।

प्रगतिवाद

हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद का आरम्भ सन् १९३६ के आसपास से मान सकते हैं जब 'प्रगतिशील लेखक संघ' की प्रथम बैठक स्वर्गीय प्रेमचंद जी के सभापतित्व में लखनऊ में हुई। एक प्रकार से उत्तर-छायावाद-काल का यह सबसे सशक्त वाद है। इसी के आधार पर इस युग (सन् १९३५—) का नाम प्रगतिवाद-युग पड़ा है।

प्रगतिवाद की प्रेरणा का स्रोत है मार्क्सवाद। कह सकते हैं कि राजनीति में जो मार्क्सवाद है, साहित्य में वही प्रगतिवाद[1]। प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण है।

प्रगतिवादियों का कहना है कि समाज में दो ही वर्ग हैं—शोषक और शोषित। शताब्दियों से इनका संघर्ष ज्ञात या अज्ञात रूप से चल रहा है। आज कल यह संघर्ष पूंजीवादियों और श्रमजीवियों के बीच है। इस संघर्ष में एक दिन सर्वहारा की विजय निश्चित है। आज की यह अर्थ-व्यवस्था जिसमें एक ओर थोड़े से लोग धनी बनते चले जाते हैं, शेष साधनहीन, उलट जायगी और उत्पादन के जिन साधनों पर पूंजीपतियों का अधिकार है उन पर समाज का अधिकार होगा। एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा जब संसार में कहीं शोषण का चिन्ह शेष न रहेगा और एक वर्ग-हीन समाज की स्थापना हो सकेगी।

प्रगतिवादी काव्य की शक्ति जो अब तक प्रत्यक्ष नहीं हुई, उसके सौंदर्य की जो अब तक चर्चा नहीं हुई, उसकी मार्मिकता का जो अब तक

विस्तृत अध्ययन और स्पष्टीकरण के लिए देखिए :

[1] सुमित्रानन्दन पंत—किताब महल इलाहाबाद—पृष्ठ ११६-१२८

उद्घाटन नहीं हुआ, उसका मुख्य कारण है यह कि प्रगतिवादी आलोचकों ने अभी तक उधर ध्यान ही नहीं दिया है। वे सिद्धांत प्रतिपादन या दूसरे पक्ष के दोष-दर्शन में ही लगे रहे। सिद्धान्त-प्रतिपादन का काम भी महत्व-पूर्ण था पर उन सिद्धांतो के अनुसार काव्य-सृजन भी हो रहा है या नहीं, यह दिखाना भी आवश्यक है। पाठकों पर कोरी सिद्धांत-चर्चा का प्रभाव बहुत कम पड़ता है। सिद्धांत जब जीवन-दर्शन का रूप ग्रहण करते हैं, जीवन-दर्शन जब कवि के हृदय को छूता है, कवि का हृदय जब उससे प्रेरणा ग्रहण कर मार्मिक घटनाओं के भीतर से रम्य छवियों का सृजन करने लगता है, उन रम्य छवियों से जब पाठकों का मन अभिभूत होकर आनंद की उपलब्धि करता है, केवल उसी समय बड़े से बड़े दार्शनिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक या आर्थिक सिद्धांत का कोई महत्व काव्य में स्वीकृत किया जा सकता है। अद्वैत एवं विशिष्टाद्वैतवादी सिद्धांतों को आधार बनाकर जैसे रहस्यवादी एवं भक्ति-काव्य का सृजन और प्रसार हुआ, कोई कारण नहीं है कि वैसे ही मार्क्स-वादी दर्शन से सार ग्रहण कर प्रगतिवादी काव्य पल्लवित और विकसित न हो सके। पर क्या प्रगतिवादी आलोचकों ने अपने कवियों का मात्र ढिंढोरा पीटने के अभी तक कोई ऐसा ठोस काम किया है जिससे उनके काव्य का हित होता? प्रगतिवादी-समीक्षा में देश-विदेश की बातों को लेकर भूमि-काएं जितनी लम्बी हैं, मूल बात उतनी ही छोटी। जिन नरेन्द्र शर्मा, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल या शिवमंगलसिंह 'सुमन' के नाम अपने लेखों में लेते-लेते ये आलोचक थकते नहीं, उन पर एक आलोचनात्मक पुस्तक तो होती जिससे पता चलता कि हिन्दी में प्रगतिवादी-काव्य की वास्तविक देन कुछ है। 'आलोचना' में प्रकाशित श्री विजयदेवनारायण साही के लेख से यद्यपि सभी-कहीं सहमत होना बहुत कठिन काम है, पर उनके इस उत्तेजक मंतव्य में निश्चित रूप के कुछ सार प्रतीत होता है—

"समकालीन कम्यूनिस्ट आलोचना की एक पकड़ इसी बात में है कि वह साहस के साथ मानवता के महान् अतीत साहित्य की ओर नहीं

ताक सकती। छोटे-छोटे लेख ही उसका अन्त है। एक भी कम्यूनिस्ट आलोचक ऐसा नहीं है जो साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास लिखने का साहस कर सके।"

हिंदी के प्रगतिवादी आलोचकों को इस चैलेंज का उत्तर देना चाहिए।

प्रगतिवादी आलोचना की यह अस्थिरता भी बड़े आश्चर्य और उलझन में डालने वाली है कि एक दिन वे जिस कवि की प्रशंसा करते हैं, दूसरे दिन उसकी निंदा करने लगते है। कोई भी प्रबुद्ध पाठक जो इस आलोचना के सम्पर्क में रहा है, वह जानता है कि एक दिन भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, निराला, पंत, दिनकर, नवीन, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार, सुभद्राकुमारी चौहान, नरेन्द्र, बच्चन, अज्ञेय, अचल सभी की जी खोलकर प्रशंसा हुई। इनमें से किसी में 'क्रांतिकारी विचारधारा' मिली, किसी में 'विद्रोह की आग' दिखाई दी, किसी में 'शक्ति का आभास' हुआ और 'जाग्रत' तो बहुत से लगे। फिर न जाने ऐसा क्या हुआ कि कुछ दिनों के उपरान्त यह सब दृष्टि का भ्रम निकला। मैं यह नहीं कहता कि आलोचक को अपनी सम्मति में सुधार करने या अपनी धारणाओं को बदलने का अधिकार नहीं है, पर एक दिन एक बात कहकर दूसरे दिन उसकी बिल्कुल उल्टी बात कहने से कवि और पाठक दोनों को बड़ा आघात पहुँचता है।

प्रश्न यह है कि ऐसा होता क्यों है ?

होता है इसलिए कि ऐसे आलोचकों के मस्तिष्क में प्रगतिवाद की कोई स्पष्ट व्याख्या कभी नहीं रही। हिंदी आलोचना की डाँवाडोल स्थिति का एक बड़ा कारण यह भी है कि उसके दो आलोचक एक मत के नहीं हैं। यहीं तक नही हमारा आलोचक अपनी बात को विश्वास और बल के साथ कह ही नहीं पाता। कारण यह है कि किसी साहित्यिक विचार या भावधारा के संबंध में उसका अपना कोई निश्चित मत नहीं है। प्रगतिवाद को ही लें। ऊपर जिन कवियों की चर्चा हुई है उनमें से बहुतों ने

भाव और कला के क्षेत्र में रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह किया है, कुछ राष्ट्रीय भावनाओं के पोषक रहे हैं, कुछ की सहानुभूति दीन-दुखियों के प्रति भी रही है और कुछ ने मार्क्स या लेनिन के नाम भी अपने काव्य में लिए हैं। मात्र इतने से कोई कवि प्रगतिवादी नहीं हो जाता। या तो यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि रूढ़ि के प्रति किसी प्रकार का भी विद्रोह, साथ ही समाज-सुधार और राष्ट्रीयता की पुकार भी प्रगतिवाद के अन्तर्गत हैं, या फिर नहीं हैं। हुआ यह कि प्रारम्भ में इन्हें प्रगतिशील भावनाएं स्वीकार कर लिया गया, फिर कुछ सोचकर उन्हें इस परिधि से निकाल दिया गया। मेरी दृष्टि से इन्हें प्रगतिवादी काव्य के अंतर्गत नहीं लेना चाहिये। प्रगतिवादी काव्य केवल उस काव्य को मानना चाहिए जो मार्क्सवादी धारणाओं का पोषण करे और प्रगतिवादी कवि उस कवि को जो मार्क्सवाद से प्रभावित हो। प्रगतिवादी होने के लिए किसी साहित्यिक का मार्क्सवादी होना आवश्यक है। यह बात यदि साहस के साथ पहले ही स्वीकार कर ली जाती तो प्रगतिवादी आलोचना में नित्य धारणाएं बदलने का अवसर न आता।

मार्क्सवादी धारणाओं के आधार पर महान काव्य का सृजन नहीं हो सकता, ऐसा कोई नहीं कह सकता। अच्छा यह हो कि मार्क्सवाद के निषेधात्मक-पक्ष पर बल न देकर उसके स्वीकारात्मक-पक्ष पर अब बल दिया जाय। गौतम बुद्ध की महत्ता इस बात में नहीं है कि वे ईश्वर को नहीं मानते थे, वरन् इस बात में कि वे संसार से दुःख को मिटाने के लिए करुणा दया, ममता पर बल देते थे। मार्क्सवाद से प्रभावित होकर इस बात पर झगड़ा करना कि काव्य अध्यात्मवादी हो कि न हो, ठीक नहीं। प्रगतिवादी आलोचना में आप यह बात भी पाइयेगा कि कुछ लोगों को कबीर का विद्रोह तो प्रिय है, पर उनका अध्यात्म नहीं। काव्य के इस प्रकार के मूल्यांकन का परिणाम यह होगा कि जब दूसरी ओर से आलोचनाएँ होंगी तो उन्हें प्रगतिवादियों की लोक-कल्याण की भावना तो प्रिय होगी, पर उनका अनीश्वरवाद नहीं। पर क्या कवि का आस्तिक या नास्तिक होना

ही उसके काव्य के मूल्यांकन में महत्वपूर्ण बात है ? प्रगतिवादियों को चहिये यह कि यदि उनके काव्य पर नारेबाज़ी, अश्लीलता, तुकबंदी, शुष्कता और अनीश्वरवाद का आरोप लगाया जाता है तो वे ऐसा काव्य जनता के सामने रखें जो उनके सिद्धांतों के अनुकूल होता हुआ भी जनता के मर्म को छू सके। तर्क का उत्तर तर्क भी है, पर कर्म से दिया जाय तो अधिक विश्वसनीय होता है। अपनी बात की महत्ता सिद्ध करने का सबसे सरल उपाय यह है कि छोटी रेखा के पास एक बड़ी रेखा खींच दी जाय। यदि मनुष्य को अपने जीवन-दर्शन पर आस्था और अपने दृष्टिकोण पर विश्वास है, तो उसके प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा खींची गई रेखा चाहे कितनी ही बड़ी हो, उससे बड़ी रेखा उसके पास सदैव खींची जा सकती है।

प्रगतिवादी दृष्टिकोण से जीवन की व्याख्या एकदम नए ढंग से की जा सकती है। पिछले एक हज़ार वर्ष के हिन्दी-काव्य पर यदि हम एक उड़ती दृष्टि डालें तो पायेंगे कि यद्यपि उसमें जीवन को कई रूपों में स्वीकार किया गया और इससे एक प्रकार की विविधता और नूतनता का काव्य में समावेश हुआ है, पर ये दृष्टिकोण बड़े एकांगी और अपूर्ण हैं। क्या यह समझाना होगा कि जीवन को राजकुमारियों के अपहरण तक सीमित नहीं किया जा सकता अतः उसकी महत्ता केवल रक्तपात में नहीं है, कि उसे नश्वर कहकर नहीं उड़ाया जा सकता अतः उसकी सार्थकता केवल भगवान के चरणों में उसे निवेदित करने में नहीं है, कि नायक नायिकाओं की परिभाषा के घेरे के बाहर भी प्राणी रहते हैं अतः उसका आनन्द केवल क्रीड़ा-विलास में नहीं है, कि वह सूक्ष्म ही सूक्ष्म नहीं है अतः उसका सौंदर्य केवल वायवी और काल्पनिक होने में नहीं है। इस दृष्टि से वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल में जीवन को जैसा चित्रित किया गया है, वह यद्यपि युग की परिस्थितियों के अनुकूल है, फिर भी इस दूरी पर खड़े होकर जब हम उसे देखते हैं तो आज कोई भी चित्र वास्तविक और विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता। जीवन का जो चित्र आज के कवि की आँखों में झूल रहा है, कल्पना की उस विराट कसौटी पर यदि हम पिछले युगों के काव्य

को परखें तो चंद और जगनिक का दृष्टिकोण, कबीर और विनय पत्रिका के तुलसी का दृष्टिकोण, बिहारी और मतिराम का दृष्टिकोण, पंत और महादेवी का दृष्टिकोण क्या है ? क्या इनमें से किसी ने स्वस्थ, परिपूर्ण, संतुलित और सौंदर्यशाली जीवन के चित्र अंकित किए हैं ? यह बात मैं बहुत ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि जो कवि जीवन का वास्तविक मुख पहचानता है वह उसे साधन नहीं मान सकता, साध्य ही मानेगा। उसे वह किसी को समर्पित नही करेगा, अखिल विश्व के सार को लेकर उसका शृंगार करेगा। वह मनुष्य को न तो सब अवगुणों की खान मानेगा और न उसे यह समझायेगा कि वह इस पृथ्वी का निवासी नहीं किसी अज्ञात लोक का वासी है। वह किसी एक भावना को चाहे वह वीरता की हो या भक्ति की या शृंगार या रहस्य की, अति की सीमा तक भी खींचकर नहीं ले जायगा। वह जीवन का चित्र इस प्रकार प्रस्तुत करेगा जिससे जीवन गौरव से मंडित हो उठे। वह उसके सहज, स्वाभाविक और शालीन रूप के ही हमें दर्शन करायेगा।

यह क्षेत्र प्रगतिवादी के सामने खुला हुआ है। वह ईश्वर को नहीं मानता। इसका अर्थ यह समझना चाहिये कि वह जीवन को मानता है। वह अध्यात्मवादी नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि वह समाज को स्वर्ग-नरक के झूठे प्रलोभन और भय में न डालकर उसके विकास का स्वाभाविक पथ प्रशस्त कर उसे लौकिक-कल्याण की ओर अग्रसर करना चाहता है। जीवन और समाज को प्रमुखता देने वाले व्यक्ति से ही हम उनके वास्तविक विकास में सहायक होने की आशा कर सकते हैं। मिट्टी को महत्ता प्रदान करने वाले व्यक्ति से ही हम पृथ्वी की गरिमा के सच्चे गीत सुन सकते हैं। पृथ्वी को उसके वास्तविक अर्थ में प्यार करने वाले व्यक्ति को ही हम पृथ्वीपुत्र की संज्ञा दे सकते हैं। पर कहाँ है ऐसा प्रगतिवादी कवि जिसकी रचनाओं से जीवन, समाज और पृथ्वी को सम्मान प्राप्त हो ?

जीवन के परिपूर्ण और स्वस्थ चित्र अंकित करने के साथ प्रगतिवाद की दूसरी संभावना यह है कि वह सच्चे अर्थों में जन-जीवन से सजन की

प्रेरणा प्रदान करे। अतीत के काव्य में जनता की आकांक्षाओं का कहीं पता नहीं चलता। पिछला युग ऐसा युग है जहाँ कवि के आकर्षण का केन्द्र ईश्वर, राजा, रईस आदि ही हैं। उनकी वीरता, लीला और क्रीड़ा देखने के लिए कहीं-कहीं थोड़ी देर को प्रजा या समाज के दर्शन होते हैं। पर उसे हम जनता और उस काव्य को जन-काव्य नहीं कह सकते। जनता के सुख दुःख को चित्रित करने वाला काव्य वह नही है। विवाह, बनवास और नगर-प्रवेश के समय प्रजा को प्रसन्न, उदास और उत्साहित दिखाना उनके जीवन को चित्रित करना नहीं है। अतीत के साहित्य को पढ़कर आज इस बात पर थोड़ा आश्चर्य हो सकता है कि भारतीय कवि पिछले एक हजार वर्षों में जनता की भावनाओ की उपेक्षा किस प्रकार कर सका। क्यों उसकी दृष्टि केवल राजभवनों में ही उलझकर रह गई?

प्रगतिवाद की तीसरी बड़ी संभावना काव्य से हताश-भावना को मिटाना है। वेदनावाद व्यक्तिवादी-काव्य का एक आवश्यक अंग है। ऐसा काव्य चाहे अध्यात्म-परक हो अथवा लौकिक-प्रेम-सम्बंधी, निराशा के चित्रणों से उसे बचाया नहीं जा सकता। आध्यात्मिक विरह और लौकिक विरह के साथ ही सामाजिक यथार्थ के चित्रण में भी व्यक्तिवादी का दृष्टि-कोण निराशावादी होता है। यदि समाज में दुःख है और व्यक्ति उसका शिकार है तो यथार्थवादी उसका चित्रण ज्यों का त्यों करेगा जिससे काव्य में वेदना की तह पर तह चढ़ती जायँगी। इस प्रकार अध्यात्मवादी, प्रेमी और यथार्थवादी तीनों घनीभूत पीड़ा को बरसाने वाले सिद्ध होते हैं। आधुनिक युग में रहस्यवादी, स्वतन्त्र गीतकार और प्रयोगवादी तीनों प्रकार के कवियों ने काव्य में वेदनावाद को प्रोत्साहन देने के कारण जुटाये हैं। समाजपरक-काव्य इस वेदना और हताश-भावना को धीरे-धीरे समाप्त कर सकता है। छायावाद-युग में कुछ वर्ष तो ऐसे बीते हैं जब हृदय की वेदना में भी कृत्रिमता घुस आई थी और हिन्दी के पाठक का जी उससे ऊब उठा था। समाजपरक-काव्य जीवन के दुःख को नहीं पहचानता या उससे आँख चुराता है ऐसा नहीं कहा जा सकता, पर वैसे काव्य का प्रणेता अर्थात्

प्रगतिवादी कवि व्यक्तिवादी की भाँति सामूहिक दुःख में अपने को अकेला नहीं पाता। सामूहिक दुःख का सामना वह सामूहिक शक्ति से करता है। वह अपने को शेष संसार से कटा हुआ नहीं, एक सशक्त संगठन का अंग समझता है, अतः आँसू के स्थान पर वह क्रोध से काम लेता है, गिड़गिड़ाने के स्थान पर वह तीखे व्यंग्य-बाण छोड़ता है। प्रणय सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में भी जिसे सुलझाने वाला स्वयं व्यक्ति ही होता है, उसका दृष्टि-कोण अधिक स्वस्थ होता है।

प्रगतिवाद हिंदी काव्य को अस्पष्टता और दुरूहता के अभिशाप से भी मुक्त कर सकता है। प्रौढ़ काव्य को मैं दुरूह काव्य नहीं समझता। उदाहरण के लिए रामचरितमानस और बिहारी सतसई में भाव और शैली सम्बन्धी गंभीरता को दोष के अंतर्गत नहीं गिना जा सकता। पर कबीर की उलटबासियाँ, सूर के कूट पद, केशवदास के कुछ छंद, इधर का थोड़ा छायावादी काव्य एवं मनोविश्लेषण के आधार पर चलने वाले प्रयोगवादी काव्य का अधिकांश—विशेष रूप से बिहार के 'नकेनवादियों' का काव्य—अस्पष्ट और दुरूह काव्य के अंतर्गत आता है और किसी भी आधार पर ऐसे काव्य की प्रशंसा नहीं की जा सकती। इसमें कुछ कवि तो सैद्धांतिक रूप से दुरूह होना पसंद करते हैं, कुछ योग्यता प्रदर्शन के मोह में बह गए हैं, कुछ अपने कार्य की जटिलता से विवश हैं। आधुनिक रहस्यवादियों का यह तर्क कि उनकी अनुभूति ही कुछ ऐसी विलक्षण या अलौकिक है कि उसे लौकिक प्रतीकों द्वारा ठीक से व्यक्त नहीं किया जा सकता या प्रयोगवादियों का नए प्रयोगों की झोंक में मन की गुत्थियों को ज्यों का त्यों रखने का आग्रह, दोनों को यह अधिकार नहीं देता कि वे पाठक के सामने भूलभुलैया खड़ी करें। क्योंकि प्रगतिवादियों का जीवन-दर्शन एक स्पष्ट दर्शन है; विशिष्ट बुद्धिजीवियों के स्थान पर जनता का मर्म छूना ही उसका लक्ष्य है, अतः आशा की जा सकती है कि वे अपने गंभीर उत्तरदायित्व को पहचान कर इस 'गूंगे के गुड़' और 'फ्रायड के मनोविज्ञान' दोनों से सामान्य पाठक को उबार सकेंगे।

क्योंकि प्रगतिवादी दुःख में आँसू बहाने की शिक्षा नहीं देता, क्रांति की ओर बढ़ने का पाठ पढ़ाता हैं, अतः निराशा के घोर अंधकार में वह चाहे तो आत्म-विश्वास जगा सकता है। सच बात यह है कि बदलते युग की नई परिस्थितियों में नई चेतना भरने का महत्वपूर्ण काम ठीक से यही कर सकता है। पर यह चेतना राजनीति को प्रमुख बनाकर नहीं जाग्रत की जा सकती। जैसे धर्म, दर्शन, अध्यात्म, मनोविज्ञान, समाजनीति, राज-नीति, अर्थनीति अपने-अपने क्षेत्र में साहित्य से सहायता भले ही ले लें, लेकिन उसे प्रमुख नहीं होने देते, इसी प्रकार साहित्य को भी इन्हें अपने घर में प्रमुख नहीं होने देना चाहिए। वह भी राजनीति और अर्थनीति से प्रेरणा ग्रहण करे, पर उन्हें सिर पर न बिठाए। प्रगतिवादी भी जो पहले साहित्यिक है बाद में अन्य कुछ, अपने पाठकों के अंतःकरण का संस्कार भाव के आधार पर ही कर सकता है और यह उसी समय संभव है जब वह प्रचारात्मक साहित्य के स्थान पर मर्मस्पर्शी-काव्य का सृजन करे। केवल इसी आधार पर वह जनता में ऐसी चेतना जाग्रत कर सकता है जिससे संसार से शोषण का अंत होकर स्वाधीनता और समानता की भावनाओं का विकास हो सके। निर्गुण के उन्मूलन में जैसे विनय-पत्रिका, भ्रमरगीत और मीरा के पद ही काम आए, भारतीय संस्कृति के प्रसार में जैसे राम-चरितमानस ने ही अंत में सहारा दिया, वैसे ही आज भी किसी प्रकार के सांस्कृतिक प्रचार के लिये श्रेष्ठ काव्य का दान ही काम आयेगा।

हमारी दृष्टि से केवल उन कवियों की गणना प्रगतिवादी कवियों में होनी चाहिए जो साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित हैं और उसके अनुकूल काव्य-रचना करते हैं। इससे न तो प्रगतिवाद की विलक्षण परि-भाषाएं करनी पड़ेंगी और न किसी कवि को एक दिन प्रगतिवादी घोषित करके दूसरे दिन उसे प्रतिक्रियावादी बतलाने की आवश्यकता पड़ेगी। नए कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा और नेमिचंद्र जैन आदि ऐसे कवि हैं जिन्हें निःसंशय प्रगतिवादी कहा जा सकता है। इनमें से किसी-किसी का मन कभी-कभी इधर-उधर बहक जाता है। इसे

भारत की मिट्टी का प्रभाव कह सकते हैं या फिर यह कह सकते हैं कि व्यक्ति का स्वभाव सुन्दर से सुन्दर सिद्धांत के बंधन में भी पूर्णरूप से बँधने का नहीं है।

इन कवियों के काव्य की सामान्य विशेषताओं पर विचार करने से कई उल्लेखनीय बातों का पता चलता है। पहली यह कि इनमें से सभी रूस और लाल चीन के प्रशंसक हैं। लाल सवेरा, लाल किरण, लाल निशान, लाल सेना की चर्चा इनके काव्य में प्रायः मिलेगी। मास्को और स्तालिनग्रेद पर भी इन्होंने रचनाएं की हैं। कुछ के हृदय में भारत के प्रति ममता अभी शेष है। ईश्वर और धर्म का समर्थन ये लोग नहीं कर पाए हैं। कुछ—जैसे केदारनाथ—ने तो दोनों पर व्यंग्य भी किए हैं। क्रांति के समर्थक सभी हैं। सभी में पूँजीवाद, साम्राज्यवाद और शोषकों के प्रति आक्रोश और घृणा की भावना विद्यमान है। शोषितों की दशा का चित्रण इन्होंने पूरी सहानुभूति के साथ किया है। प्रायः सभी कवियों ने मज़दूर और किसानों में कोई भेद नहीं किया है। फिर भी केदारनाथ, रामविलास, त्रिलोचन, नामवरसिंह आदि ने किसानों के प्रति अधिक ममता बिखेरी है, नेमिचंद्र एवं भारतभूषण ने मजदूरों के प्रति। प्रकृति प्रेम एकाध को छोड़ कर सभी में पाया जाता है। त्रिलोचन को तो विशेष रूप से धरती का कवि कहना चाहिए। गाँव के प्रति सबसे सरस ममता नामवरसिंह में पाई जाती है—यों केदार, रामविलास, नागार्जुन और त्रिलोचन भी गाँव के कवि हैं। इनमें सभी कवि यथार्थवादी और आशावादी हैं—कुछ रोमांटिक भी जैसे सुमन, नेमिचंद्र और नरेश। व्यंग्य में नागार्जुन बेजोड़ हैं—यों भारतभूषण में भी उसकी कमी नहीं। हृदय की कोमलता सभी में थोड़ी बहुत पाई जाती है। भावुकता से अधिक बौद्धिकता ही इन कवियों का संबल है। कुछ को तो काव्य में नारेबाज़ी भी प्रिय है जैसे भारतभूषण को। कला सरल है, पर अधिक निखरी हुई अभी नहीं।

नागार्जुन

नागार्जुन की कविताओं का एक सङ्कलन 'युगधारा' नाम से प्रकाशित हुआ है। उनकी बहुत सी रचनाएँ अभी अप्रकाशित हैं।

साम्यवाद की मान्यताओं के अनुकूल अपनी जीवन-दृष्टि बनाकर काव्य में प्रगतिवाद की पुष्टि करने वालों में नागार्जुन अग्रणी हैं। उनके जीवन की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी रहीं कि वे जिस ढङ्ग से सोचते हैं, उससे भिन्न सोच ही नहीं सकते थे—

(१) पैदा हुआ था मैं—
दीन-हीन अपठित किसी कृषक-कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से
कवि ! मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का
जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में !!
मेरा क्षुद्र व्यक्तित्व
रुद्ध है, सीमित है—
आटा दाल नमक लकड़ी के जुगाड़ में !
पत्नी और पुत्र में !
सेठ के हुकुम में !
कलम ही मेरा हल है, कुदाल है !!
बहुत बुरा हाल है !!!
करूँ मैं किस वर्ग में गिनती अपनी ?

(२) होशियार कुछ देर नहीं है लाल सवेरा आने में,
लाल भवानी प्रकट हुई हैं सुना कि तैलंगाने में।

पर जीवन के व्यक्तिगत दुःख ने नागार्जुन को निराशावादी नहीं बनाया, संघर्षप्रिय बना दिया है। अपने दुःख के भीतर से अपने से भी

असंख्य छोटे लोगो के दुःख को उन्होंने समझा। इसी से दलित वर्ग के पक्ष में खड़े होकर उसकी शक्ति को उभारने और उसकी अन्तिम विजय में विश्वास दिलाने वाली बहुत सी रचनाएँ लिखने में नागार्जुन ने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया। व्यक्तिगत दुःख पर ही न रुक कर वे बार-बार व्यापक दुःख पर प्रकाश डालने लगते हैं और यही सच्चे कवि की पहचान है। अतः धरती, जनता और श्रम के गीत गाने वाले इस युग के संवेदनशील कवियों में नागार्जुन का नाम सदैव अमर रहेगा।

नागार्जुन की प्रतिभा के रचनात्मक पक्ष के साथ उसका एक विध्वंसात्मक पक्ष भी है जो प्रायः आक्रमण का रूप धारण करता है। बहुत-सी सुन्दर वस्तुओं के सुन्दर, सहज, और कल्याणमय रूप के पीछे जो कुत्सित, कृत्रिम और अकल्याणकारी रूप छिपा रहता है, उसे नागार्जुन ने खोलकर दिखाया है। तप नारी-जीवन का सत्य नहीं है, यह उन्होंने 'भिक्षुणी' में सिद्ध किया है—

भगवन अमिताभ !
देकर तिलांजलि मिथ्या संकोच को
हृदय की बात लो, कहती हूँ आज मैं—
कोई एक होता
कि जिसको अपना मैं समझती
भले वह पीटता, भले ही मारता
किंतु किसी क्षण में प्यार भी करता
जीवन-रस उड़ेलता मेरे रिक्त पात्र में
भूख मातृत्व की मेरी मिटा देता;
स्त्रीत्व का सुफल पाकर अनायास
धन्य मैं होती !
कृतकृत्य होती !
भगवन अमिताभ, तब,
पूजा के समय पर कितने उत्साह से

'टा मैं बजाती!
तन्मय हो कितनी, आरती उतारती !
पास ही होता नटखट शिशु खेलता
यदि किसी भग्नमुख प्रतिमा से ढिठाई वह करता,
दिखा-दिखा तर्जनी मैं उसे रोकती ।

यह आक्रमण प्रायः व्यंग्य का रूप धारण करता है । व्यंग्य करते समय इन्होंने राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, समाज-सुधारक, कलाकार किसी को नहीं छोड़ा है । ढोंग किसी प्रकार का हो, कितने ही बड़े आदमी का हो, नागार्जुन सहन नहीं कर पाते ।

सम-सामयिक समस्याओं और देश की वर्तमान स्थिति पर इन्होंने काफ़ी लिखा है । ये अकेले व्यक्ति हैं जो कांग्रेस सरकार की दुर्बलताओं को निर्भीकता से चित्रित करते हैं और जेल भी भुगत आए हैं । महात्मा गांधी की हत्या में सम्प्रदायवाद, फ़ासिस्टवाद और गृह-मंत्री की असावधानी की गंध उन्हें मिली और यह बात उन्होंने डंके की चोट कही । हरिश्चन्द्र युग के कुछ साहित्यिकों को छोड़कर पिछले पचास वर्षों में नागार्जुन जैसा तीखी और सीधी चोटें करने वाला व्यंग्यकार हमारे साहित्य में नहीं हुआ । इनका व्यंग्य क्योंकि वस्तुस्थिति को सामने लाता है; अतः बड़ा ही प्रभावशाली होता है । वह केवल ऐसे स्थानों पर ही दुर्बल पड़ता दिखाई देता है जहाँ स्पष्ट या सांकेतिक रूप में व्यक्तिगत हो जाता है । फिर भी उसकी अपनी एक कचोट तो है ही—

(१) आज़ादी की कलियाँ फूटीं, पांच साल में होंगे फूल,
पांच साल में फल निकलेंगे, रहे पंत जी झूला झूल;
पाँच साल कम खाओ भैया, गम खाओ दस-पंद्रह साल,
अपने ही हाथों से झोंको यों अपनी आँखों में धूल,
आज़ादी की कलियाँ फूटीं, पांच साल में होंगे फूल ।

(२) चाहते हो—
अगर तुम निर्विघ्न होकर

शांति पूर्वक
शिल्प संस्कृति कला का, साहित्य का निर्माण करना,
तो उठो
मन और तन की समूची ताकत लगाकर
बिघ्न बाधा के पहाड़ों को गिरा दो, ढाह दो।
अमंगल के, अशुभ के उन हेतुओं को ध्वस्त कर दो।
अन्यथा—
कुछ भी नहीं तुम कर सकोगे
बहुत होगा, भागकर शिमला कि नैनीताल
अथवा
मसूरी के पास जाकर
ललित लोकायन बनाकर
वहीं चेन्नन्यास लोगे!

यह सोचना भूल होगी कि ऐसे व्यक्ति के हृदय में कोमलता नहीं पाई जा सकती। भावुकता के क्षण भी नागार्जुन के जीवन में कम नहीं आए। कहीं-कहीं यह भावुकता किसी प्राचीन गाथा के सहारे बहुत ऊँचे धरातल पर व्यक्त हुई है। अहल्या को लेकर लिखी गई 'पाषाणी' शीर्षक रचना ऐसी ही है। इसमें अहल्या, गौतम और इंद्र की प्रचलित कथा की मूल बातों को ज्यों का त्यों स्वीकर करते हुए भी उन्हें एक नए अर्थ की ओर मोड़ दिया गया है। राम यहाँ शिला का स्पर्श नहीं करते, जड़वत्, मूर्छित अहल्या को ही संज्ञा प्रदान करते हैं। उस समय अहल्या की सहज-भाव से कही गई एक साधारण-सी बात राघव को इस प्रकार छू जाती है कि उनकी जीवन-धारा ही बदल जाती है। सभी दृष्टियों से इस रचना की गिनती आज की अत्यधिक सफल रचनाओं में होनी चाहिए।

नागार्जुन ने कुछ रचनाएँ प्रवासी की स्थिति में भी लिखी हैं। उनमें से मित्र और पत्नी को सम्बोधन कर लिखी गई कविताएं बड़ी मर्म-स्पर्शी बन पड़ी हैं। 'सिंदूर तिलकित भाल' शीर्षक रचना को पढ़कर तो

कभी कोई यह संदेह नहीं कर सकता कि प्रेम की गहराई ने नागार्जुन को नहीं छुआ। क्या हुआ यदि वह प्रेम 'निराला' के समान स्वकीया के प्रति उमड़ा है तो! इस रचना से व्यक्तिगत सम्बंधों के प्रति कवि की सजगता और ममता प्रकट होती है। जन्म भूमि की नगण्य से नगण्य वस्तु के प्रति व्यक्ति के हृदय का रागात्मक सम्बंध जन्म-भूमि से दूर होकर ही जाना जा सकता है। रागरंजित प्रकृति की पृष्ठभूमि से स्मृति की तीव्रता और घनता के बीच भावना की रसार्द्रता और दृष्टि की मार्मिकता इन पंक्तियों में कैसी लहरें ले रही हैं, यह देखिए :—

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल!
याद आता तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल!
याद आते स्वजन
जिनकी स्नेह से भींगी अमृतमय आँख
स्मृति-विहंगम की कभी थकने न देगी पाँख
याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम
याद आतीं लीचियाँ औ' आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू-भाग
याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदिनि और तालमखान!
यहाँ भी सच है, न मैं असहाय
यहाँ भी है व्यष्टि औ' समुदाय
किंतु जीवन भर रहूँ फिर भी प्रवासी ही कहेंगे हाय!
सांध्य नभ में पश्चिमांत समान
लालिमा का जब अरुण आख्यान
सुना करता मैं सुमुखि, उस काल
याद आता तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल!

प्रकृति ने भी नागार्जुन के हृदय को कम आकर्षित नहीं किया। वर्षा पर उनकी कई रचनाएँ बड़ी रम्य बन पड़ी हैं। प्रकृति की इस रम्यता

के बीच कवि कहीं-कहीं जीवन के वैषम्य को नहीं भुला पाता जैसे 'बरफ पड़ी है' में। पर यह तो स्वाभाविक ही था। शुद्ध प्रकृति वर्णन की इनकी कुछ पंक्तियाँ देखिए—

अमल धवलगिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है
बादल को घिरते देखा है!

केदारनाथ अग्रवाल

'नींद के बादल' केदरनाथ अग्रवाल की कविताओं का पहला संग्रह है। इस संग्रह में प्रणय-सबंधी रचनाओं की अधिकता है। काव्य की आरंभिक प्रेरणा उन्हें प्रेम से ही मिली। प्रेरणा के अतिरिक्त प्रेम उनके काव्य की शोभा भी रहा है। प्रेम के कारण ही उनके काव्य में नई दीप्ति आई। मिलन-काल की रचनाओं में जीवन के प्रति पूरा उत्साह पाया जाता है और प्रत्येक बात से प्रसन्नता झलकती प्रतीत होती है। रूपासक्ति और शारीरिक सुख-भोग की थोड़ी आकांक्षा भी इन रचनाओं में पाई जाती है। अपनी प्रेमिका की सुंदरता के कारण समस्त प्रकृति ही कवि को सुंदर प्रतीत होने लगी है।

इनका संयोग-पक्ष जैसा आशा और आह्लाद से पूर्ण है, वियोग-पक्ष विषाद से वैसा ही भाराक्रांत। कवि देखता है प्रेम का सबसे बड़ा विरोध सामाजिक नियमों से है। ऐसी दशा में वह कभी तो प्रेयसी के चित्र से बातें करके सान्त्वना पाने की चेष्टा करता है; कभी स्वप्न-मिलन से संतोष। भावना अब इतनी व्यापक हो गई है कि प्रकृति में सभी कहीं उसे अपनी प्रिया के दर्शन होने लगे हैं—

(१)

हम दोनों का प्यार रहे!
जिस दूर्वा पर हम तुम लेटे
कोमल हरित उदार रहे,
रजनी की आँखों में जागृति
ईश्वर साक्षीकार रहे,
तरु में प्रेम-विकार, लता में
पुलक वासना भार रहे,
हम तुम दोनों को मद विह्वल
चुंबन का अधिकार रहे!

(२)

तेरी तो सुधि आती प्यारी वैसे ही सुधि आती।
जैसे नंदन-वन की मृग को रह-रह कर सुधि आती।
दूब दबाए, गात मिलाये मृगी जहाँ मदमाती...।

इन रचनाओं का कवि आस्तिक और कल्पना प्राण है; पर अंत में नींद के इन बादलों को रोमांटिक-भावना का प्रतीक बतलाते हुए वह इनसे विदा लेता है और नव जागरण के नव-प्रभात की लालिमा का स्वागत करता है—

लेकिन प्यारे नींद के बादल
लाल सबेरा होते होते
सब होने लगते हैं ओझल !
बंद आँख को बंद छोड़कर
जाने कैसे और कहाँ से
मुझे चकित कर—
चुपके चुपके चल देते हैं
जैसे कभी नहीं आए थे।

अपनी दूसरा रचना 'युग की गंगा' में केदारनाथ अग्रवाल एक नई चेतना लेकर उतरे हैं।

साधारण जीवन के इनके चित्रण बड़े मार्मिक हैं। यद्यपि व्यक्ति की कल्पना इन्होंने शक्ति के प्रतीक के रूप में की है, पर सामान्य जीवन को सदैव अदर्शात्मक बताने के पक्ष में ये नहीं हैं। ऐसे मस्तमौला लोगों और मजदूरों के चित्रण भी इन्होंने किए हैं जो चरस और शराब पीने के आदी हैं। 'चंदू' और 'चैतू' शीर्षक रचनाएँ ऐसी ही हैं। काल्पनिक आदर्शवाद और आशावाद से रहित ऐसी, रचनाएँ ही सच्ची यथार्थवादी रचनाएँ कहलाती हैं। गाँव और नगर, धनी और निर्धन का अंतर भी इन्होंने बड़ी पटुता से अंकित किया है। वर्तमान जीवन के खोखलेपन को चाहे वह इन्हें कहीं दिखाई दिया हो चित्रित करने में ये कभी नहीं

हिचकते। सामाजिक मंगल पर आधारित इनकी यथार्थवादी दृष्टि वास्तविकता की भयंकरता को कहीं भी पकड़ लेती है। देखिए:—

शहर के छोकड़े
मैले, फटे, बदबूदार वस्त्र पहने
बिना तेल कंघी के
रूखे उलझाए बाल,
नंगे पैर
नंगे सिर
कीचड़ लपेटे तन,
गलियों में घूमते हैं!
खाली जेब
खोंचे के पास बैठ
स्वाद लेते हैं खूब चाट का चीखे बिना।
जूठी जली बीड़ियों को बीनकर
घूमते निकलते हैं पीते हुए!
माँओं और बहनों को
पाप की दृष्टि से ताकते हैं!
शहर के छोकड़े
गंदा धुआँ छोड़ते हैं समाज में!

ईश्वर और धर्म पर इस कवि ने हृदय खोलकर व्यंग्य और आक्षेप किए हैं; पर ऐसे ही ईश्वर और धर्म पर जिनमे कुछ सार नहीं रह गया है।

गॉव की प्रकृति को विशेष रूप से प्यार करने के कारण कवि उसे जन-जीवन के साथ एकाकार करने में समर्थ हुआ है। इस प्रकृति-वर्णन की पहली विशेषता है यथातथ्य चित्रणों की भरमार जिनमें यहाँ-वहाँ कुछ रेखाएं उभारकर वह अपने ढंग से उन्हें मूर्त करने में सफल हुआ है। दूसरा गुण है प्रकृति के शक्तिमय परुष-पक्ष को प्रत्यक्ष करना। तीसरे, उसके उत्साह, उसके आनंद, उसकी मस्ती को भी वह सामने लाता है।

चौथी बात जो सभी रचनाओं में झलक मार रही है वह है पराजय के स्वरों पद आशा के गूंजते स्वर को तैरा देना।

(१) आर पार चौड़े खेतों में
चारों ओर दिशाएं घेरे
लाखों की अगणित संख्या में
ऊंचा गेहूँ डटा खड़ा है।
ताकत से मुट्ठी बाँधे है,
नौकीले भाले ताने है।

(२) घन गरजे जन गरजे।
बंदी सागर को लख कातर
एक रोष से
घन गरजे जन गरजे।
क्षत-विक्षत लख हिमगिरि अंतर
एक घोष से
घन गरजे जन गरजे।

(३) हवा हूँ, हवा मैं
वसंती हवा हूँ।
वही हाँ वही जो
धरा का वसंती
सुसंगीत मीठा
गुंजाती फिरी हूँ।
हवा हूँ, हवा मैं
वसंती हवा हूँ।

(४) सुन पड़ता है
मीठा मीठा रस टपकाता
सुग्गे का स्वर
टें टें टें टें।

सुन पड़ता है
वनस्थली का हृदय चीरता
उठता गिरता
सारस का स्वर
टिरटों टिरटों।
मन होता है
उड़ जाऊँ मैं।

ऐसा व्यक्ति स्वभावतः कर्म का समर्थक और जीवन का प्रेमी होता है। उसकी बात-बात से आशा झलकती है।

इन कविताओ में कला बहुत कम है, फिर भी इन्हें कलाहीन नहीं कहा जा सकता। प्रभावशाली रचनाओं को कलाहीन कोई किस आधार पर कहे ? भाषा में अलंकरण नहीं है। वह सीधी-सादी है। बहुत से ग्रामीण शब्दो जैसे फूहड़, पट्ठे, बौड़म, रंडी, भिनसार आदि का प्रयोग कवि ने बेधड़क होकर किया है।

विषय और कला दोनों में ये रचनाएँ छायावादी रचनाओं से सर्वथा भिन्न प्रकार की हैं और इस बात की सूचना देती हैं कि एक युग समाप्त होकर दूसरा प्रारंभ हो गया है।

इनकी नई रचनाओं का विषय है जनता। ये धरती और किसानों के कवि हैं। प्रारभ में ही उन्होंने स्पष्ट किया है—

हम लेखक हैं
कथाकार हैं
हम जीवन के भाष्यकार हैं,
हम कवि हैं जनवादी।
हम सृष्टा हैं
श्रम-शासन के
मुद मंगल के उत्पादन के,
हम द्रष्टा हितवादी।

यह कवि वर्त्तमान से असंतुष्ट और क्षुब्ध है। प्राणियों को उसने दो वर्गों में बाँट दिया है—शोषक और शोषित। शोषकों के प्रति अपना आक्रोश स्थान-स्थान पर तरह-तरह से व्यक्त किया है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से जहाँ कवि वस्तु-स्थिति की ओर इंगित करता है, प्रतीक-पद्धति का सहारा लेता है, अथवा वातावरण द्वारा शोषितों की विवशता प्रदर्शित करता है, वहाँ, तो कवि-कर्म सफल हुआ है; पर जहाँ आवेश में आकर उसने संयम खो दिया है वहाँ पाठक को अपने साथ लेने में असमर्थ रहा है। दोनों के स्वरूप को देखिए—

(१)

रात अँधेरी
दिया न बाती
तकवैया कुरिया में बैठा
ताक रहा है अपनी खेती!
प्यारे प्यारे प्यारे पौधे
जिनको उसने खुद उपजाया
नाती, पोते और पनाती-सा दुलराया
उन सबको—उन सब पौधों को
भारी तम ने ढाँप लिया है!
हिंसक पशु धावा करते हैं
खेती को चौपट करते हैं
लाचारी है...
तकवैया हैरान बहुत है!
एक सुअर है
सौ सुअरों का उसका दल है
सब मिलकर हत्या करते हैं
नाती पोतों की—पौधों की!
रात अँधेरी

दिया न बाती
डर धरती पर रेंग रहा है
तकवैया बेहद चिंतित है।

(२)

साम्राज्यवाद के गुरगे
साम्राज्यवाद के कुत्ते
भू-कर उगाहने वाले
दल्लाल दुष्ट धरती के
आना धेला के ज़मीदार;
लाला साहब पटवारी जी
धरती माता के कुलांगार;
थाने का चौकीदार नीच
जो वफ़ादार है द्वारपाल
इस चरमर करते शासन का।

वर्तमान को बदलने की प्रबल कामना केदारनाथ में पाई जाती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में ऐसे ही व्यक्तियों, वस्तुओं और शक्तियों की प्रशंसा की है जो या तो क्रांति में सहयोग देती दिखाई दी हैं या जिनका स्वरूप ही क्रांतिकारी है—

हाथ जो
चट्टान को
तोड़े नहीं
वह टूट जाये।

कवि ने बहुत से किसानी-गीत लिखे हैं जो इस बात के परिचायक हैं कि वह जन-जीवन में घुल मिल गया है। उसके खेत बोलते से प्रतीत होते हैं—

ज्वार खड़ी खेतों में ऊँची लहराती है,
कहती है मेरे यौवन को बढ़ने देना।

मेरी इच्छा है जीने की, जीने देना,
जी भर मुझको दूध रुपहली पीने देना,
शाम सवेरे के रंगों में रँगने देना,
मस्त हवा के हिलकोरों में हँसने देना।
आती हैं जो प्रिय बालाएँ आने देना,
काली आँखों में मुझको बस जाने देना,
पत्तों से चंचल आँचल हिल जाने देना,
दिल से दिल मेरे उनके मिल जाने देना।
कारी, धौरी गायों को कुदराने देना,
मेरी छाँहों में पूरी दुधियाने देना,
चोरी चोरी मेरी पत्ती खाने देना,
पागुर करती आशा से हुलसाने देना।
इससे पहले मुझे न छूना।

पर केदारनाथ का यह भी विश्वास है कि व्यक्ति की मुक्ति साम्यवाद के आधार पर ही होगी। उनकी रचनाओं में इस वादी स्वर की झंकार यहाँ-वहाँ सुनाई पड़ती है—

(१) लाल सोने का सवेरा चमचमाओ,
लेखनी के लोक में आलोक लाओ।

(२) तारे दूर बहुत धीमे हैं,
लाल सवेरे की देरी है।

(३) लाल किरन का माथा चूमो।

(४) हल, हँसिया का और हथौड़ा
का परचम लहराये जा,
जनता की सरकार सभी की
कायम कर मुसकाये जा;
जल्दी जल्दी हाँक किसनवा
बैलों को हुरिकाये जा!

रामविलास शर्मा

डा० रामविलास शर्मा की ख्याति विशेष रूप से एक प्रगतिवादी आलोचक के रूप में है; पर कवि के रूप में भी उन्हें बड़ा कोमल और संवेदनशील हृदय मिला है। उनकी रचनाओं में विषय से भी अधिक प्रमुखता उनके दृष्टिकोण को प्राप्त हुई है। चाहे वे किसी किसान के जीवन से परिचय करायें, किसी आधुनिक नगर का वर्णन करें, किसी कवि की प्रशस्ति लिखें, प्राचीन संस्कृति के किसी नग्न प्रतीक का नग्न रूप दिखाएँ या फिर प्रकृति पर ही दृष्टि डालें, उनका यह दृष्टिकोण वर्ण्य विषय को अपने अनुकूल ढालने में कभी नहीं चूकता।' ४३ का अकाल हो या' ४७ का हत्याकांड, सोवियत चित्र हो या खजुराहो की मूर्तियाँ, बैसवाड़े का जीवन हो या दाराशिकोह की मृत्यु का प्रसंग, सभी कहीं कवि अपने काम की सामग्री ढूंढ़ लेता है। निश्चित रूप से यह दृष्टिकोण साम्यवादी या प्रगतिवादी है।

गाँव के जीवन, गाँव के वातावरण और गाँव की प्रकृति में यह कवि अत्यंत सहज भाव से घुल मिल गया है। किसान की आकांक्षाओं, उसके अभावों और उसकी शक्ति तीनो को उसने स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है। साथ ही जमींदारों, ताल्लुकेदारों और सरकारी अफ़सरो के प्रति घृणा भी प्रदर्शित की है। श्रमिकों के दुःख और शक्ति को भी इन्होंने इसी स्वाभाविकता से अंकित किया है। क्रांति के लिए जन साधारण में असंतोष के बीज बोना रामविलास जी कविता का एक लक्ष्य मानते हैं—

धरती के पुत्र की
होगी कौन जाति, कौन मत, कहो कौन धर्म ?
धूलिभरा धरती का पुत्र है।
कुसंस्कृत भूमि यह किसान की—

धरती के पुत्र को
जोतनी है गहरी दो चार बार, दस बार,
बोना महाशक्ति वहाँ बीज असंतोष का
काटनी हैं नए साल फागुन में फसल जो क्रांति की।

राष्ट्रीय पताका पर शर्मा जी की दो रचनाएँ है। भारत के प्राचीन इतिहास को दुहराते हुए इसे उन्होंने गत युगों के ध्वंस पर 'नई संस्कृति की प्रतीक माना है। भविष्य की न जाने कितनी आशाओं के संकेत इससे मिल रहे हैं। पर एक राष्ट्र-प्रेमी और इनके दृष्टिकोण में यहाँ भी यह अंतर है कि इनके अनुसार अब हमें इसलिए कोई भय नहीं होना चाहिए कि हमारी स्वाधीनता की पताका को सोवियत और चीन देख रहे हैं। यह बात चाहे कितनी ही सद्भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हो, पर किसी भी देश के स्वाधीन-चेता प्राणियो को थोड़ी खटकेगी अवश्य।

ऊपर नीर भरे बादल हैं
नीचे है आज़ाद पताका।
एक नए पौधे सी उगती
उड़ती है आज़ाद पताका।
शांति संदेसा सबको देगी
भारत की आज़ाद पताका।
चीन सोवियत देख रहे हैं
यह अपनी आज़ाद पताका।
दीपक की लौ सी उठती है
भारत की आज़ाद पताका।
ऊपर नीर भरे बादल है।
नीचे है आज़ाद पताका।

अपने संग्रह का नाम रामविलास जी ने 'ऋत संहार' दिया है। इसमें अधिक संख्या है भी प्रकृति-सम्बन्धी रचनाओं की। सभी ऋतुओं का वर्णन यथासंभव इनमें पाया जाता है। इनका प्रकृति वर्णन भी विशेष

प्रकार का है। पहले यह एक प्राकृतिक वातावरण अंकित करते हैं जो बहुत सजीव और चित्रमय होता है, फिर धीरे से उसमें किसी प्राणी—नर या नारी—को ला खड़ा करते हैं, इसके उपरांत अपने-जीवन दर्शन की छाप उस पर लगा देते हैं। प्रकृति के बीच नारी के दो अनुपम आकर्षक चित्र देखिए—

(१) **एक घनी अमराई-सा**
यह हृदय अवध का,
तालों में उगती हैं सुंदर केका-बेली,
दुनिया में अनुपम हैं यहाँ शरद की साँझें,
टूटे मंदिर-लोटों में भर फूल पूजने जाती हैं बहुएँ कुमारियाँ।

(२) **बीच खेत में सहसा उठकर**
खड़ी हुई वह युवती सुंदर,
लगा रही थी पानी झुककर,
सीधी करे कमर वह पलभर,
खड़ी होगई सहसा उठकर,
घेरे उसे जहाँ दल के दल,
उठते हैं कुहरे के बादल,

रामविलास शर्मा के प्रारम्भिक गीतों और सोनेटों में किसी विशेषता के दर्शन नहीं होते। इनमें तत्सम शब्दो का अधिक प्रयोग है, भावों में स्पष्टता की कमी है, चित्र पूरे नहीं उतरते और शैली पर कहीं-कहीं निराला का प्रभाव है। पर आगे चलकर जहाँ ये अपने स्वतन्त्र पथ पर मुड़ गए हैं वहाँ सभी कहीं एक प्रकार की शक्ति इनकी रचनाओं में परिलक्षित होती है। इनके राजनीतिक विचार चाहे किसी वाद से सम्बन्ध रखते हों, पर जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण अत्यंत स्वस्थ है। महाकवि निराला और अवधी के प्रसिद्ध कवि बलभद्र प्रसाद दीक्षित को केन्द्र बनाकर लिखी गई इनकी रचनाएँ इस बात का प्रमाण रहेंगी। जिस स्थिति में दोनों कवियों को इन्होंने देखा है उसमें कोई भी व्यक्ति हिल जाता। रामविलास जी न हिले

हों, ऐसी बात नहीं है; पर जीवन के प्रति आस्था इन्होंने दोनों स्थानों पर नहीं खोई। दूसरी रचना की कुछ पंक्तियाँ देखिए जो विशिष्ट और सामान्य जीवन पर एक साथ प्रकाश डालती हुई कवि के हृदय की आर्द्रता और दृष्टि की दृढ़ता को व्यञ्जित करती हैं—

यह मानव का हृदय क्षुद्र इस्पात नहीं है,
भय से सिहर उठे वह तरु का पात नहीं है।
रेत और पानी से बन जाते हैं पत्थर,
हृदय बना है आग और आँसू से मिलकर।
फिर भी सूनी धूप देखकर तरु-पातों पर;
कहीं विलम जाता है मन बिसरी बातों पर।
दुख का पारावार उमड़ आया आँखों में,
यह जीवन की हार नहीं छिपती आँखों में।
मेरी अंध निराशा का यह गीत नहीं है,
मन बहलाने को मोहक संगीत नहीं है।
काल रात्रि में चार प्रहर अविराम जागरण,
यही व्यथा का पुरस्कार है, अति साधारण।
बँध न सकेगा लघु सीमाओं में लघु जीवन,
लघु जीवन से अमर बनेगा बहु-जन-जीवन।
अडिग यही विश्वास क्षुद्र है जीवन चंचल,
अनजानी है राह, यही साहस है संबल।
यह मानव का हृदय क्षुद्र इस्पात नहीं है,
भय से सिहर उठे वह तरु का पात नहीं है।

शिवमंगलसिंह 'सुमन'

शिवमंगलसिंह 'सुमन' के तीन काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं— (१) हिल्लोल (२) जीवन के गान और (३) प्रलय-सृजन।

'हिल्लोल' का प्रधान विषय प्रेम है। कहना चाहिए कि प्रेम के आघात ने ही 'सुमन' के हृदय में कविता जगाई। व्यथा की चर्चा करते हुए भी इस कवि ने इस दिशा में बड़े स्वस्थ दृष्टिकोण का परिचय दिया है। इस आघात को एक स्वाभाविक घटना मानकर वह आगे बढ़कर जन-संघर्ष को बल प्रदान करता है—

(१)

मेरे उर में जो निहित व्यथा,
कविता तो उसकी एक कथा,
छंदों में रो गाकर ही मैं, क्षणभर को कुछ सुख पा जाता।
मैं सूने में मन बहलाता।

(२)

मैं कर्तव्य विवश था वरना तुममें निज को लय कर देता,
तिल तिल निज अस्तित्व मिटाकर अपने को प्रियमय कर देता,
किंतु यहाँ प्रतिपल मुझसे ही कितने पड़े कराह रहे हैं,
विदा, मिलेंगे और कभी, इस क्षण रण-भिक्षा चाह रहे हैं।
विस्तृत पथ है मेरे आगे, उस पर ही मुझको चलना है,
चिर शोषित असहायों के सँग अत्याचारों को दलना है,
साहस हो तो आओ तुम भी मेरा साथ निभा दो थोड़ा,
अगर नहीं, तो अब तो मैंने उस जीवन से ही मुँह मोड़ा।

आगे चलकर 'सुमन' क्रांति का आवाहन करने वाले कवि बन जाते हैं। उनकी रचनाओं में 'निराला' और 'दिनकर' दोनों का सम्मिलित ओज पाया जाता है। यह ओज भाव का ओज है—शब्द का नहीं—

जिससे अदम्य उत्साह छलका पड़ता है। अपने पथ को स्वयं बनाकर चलने की प्रवृत्ति कवि में प्रारंभ से ही पाई जाती है। प्रेम की कोमलता मिट गई हो, ऐसी बात नहीं है, पर उसकी सार्थकता कवि इस बात में समझता है कि वह नित्य जीवन और जन-जीवन के संघर्ष को प्रेरणा और बल दे। अपने लिए प्यार की उपलब्धि से पहले मानव मात्र के लिए प्यार की उपलब्धि वह चाहता है। अतः उसकी रचनाओं में विप्लव का भाव है प्रधान, प्यार का गौण।

क्रांति के इस ओजस्वी स्वर में राष्ट्रीयता का स्वर भी सम्मिलित समझना चाहिए। यह राष्ट्रचेतना आगे चलकर मानववाद में परिवर्तित हो जाती है। प्रकृति की छाया में वह भूख से बिलखते बच्चों, दीन किसानों, दुःखी मजदूरों और उजड़े घरों को देखता है। इस व्यापक दुःख का मूल उसे सामाजिक विषमता में दिखाई देता है। इसी से पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपना स्वर प्रबल करने का वह निश्चय करता है और यहीं से वह समाजवाद का समर्थक बन जाता है।

'प्रलय-सृजन' में निश्चित रूप से वह प्राचीन जर्जर पूँजीवादी समाज को नष्ट करके नव-निर्माण के लिए आकुल है। यों रोमांस, करुणा और प्रगति के चित्र उसने समान शक्ति से अंकित किए हैं जिसका प्रमाण 'दुनिया का यौवन', 'कलकत्ते का अकाल' और 'चल रही उसकी कुदाली' आदि रचनाएं हैं। फिर भी उसका झुकाव साम्यवाद की ओर अधिक होता जा रहा है, ऐसा लगता है। दूसरे महायुद्ध के समय रूस को मानवता के उद्धार का प्रतीक मानकर उसने कई कविताएं इस अनुराग से लिखी हैं जैसे सब कुछ उसने अपनी आँखों से देखा हो और उसका जन्म उसी देश में हुआ हो। 'सोवियत् रूस के प्रति', 'मास्को अब भी दूर है', 'स्तालिनग्रेद' 'लाल सेना' आदि ऐसी ही रचनाएं हैं।

(१)

प्यार जो तुमने सिखाया,
वह यहाँ पर बाँध लाया,

प्रीति के बंदी नहीं करते कभी फ़रियाद।
जेल में आती तुम्हारी याद।

(२)

बोले बच्चे आओ मिलकर
फिर वह गाना गाओ,
दुनिया भर के मज़लूमो अब
आज एक हो जाओ।
हम मेहनतकश हमें कौन सी
ताक़त रोक सकेगी?
अच्छा हुआ ढहे सब खँडहर
दुनिया नई बसेगी।
लाल निशान, लाल सैनिक
आँखों में लाल सरूर है,
दस हफ़्ते दस साल बन गए
मास्को अब भी दूर है।

गजानन माधव मुक्तिबोध

मुक्तिबोध की अभी बहुत कम रचनाएँ देखने में आई हैं। इनमें भाव-मग्नता और बौद्धिक सजगता दोनों पूरी-पूरी पाई जाती हैं; पर कला-पक्ष इनका दुर्बल है। जीवन में तीव्रता से अनुभव करने और स्वभाव से अत्यंत संवेदनशील होने पर भी इस गम्भीर संवेदन को पाठक के हृदय तक पहुँचाने में अभी तक ये असमर्थ ही रहे हैं। इनकी विचार-प्रधान रचनाओं को बढ़कर यह तो स्पष्ट होता है कि वे आत्म-मंथन से प्रसूत हैं, पर यह समस्त आत्म-विश्लेषण पाठक को कुछ उलझा उलझा सा लगता है। कवि के निकट उसकी भावनाएँ और उसका आत्म-चिंतन दोनो स्पष्ट रहे होंगे; पर अपनी शैली के कारण उसी मात्रा में पाठक के निकट उसे प्रेषणीय वह नहीं बना पाया है। शैली की यह अस्पष्टता अधिकतर भाषा की कठिनाई के कारण है। जहाँ संस्कृत-गर्भित शैली का प्रयोग है वहाँ मधुर से मधुर भावनाएँ, रम्य से रम्य कल्पनाएँ और प्रौढ़तम विचार भी कुछ दब से गए हैं। हाँ, जहाँ ये सरल भाषा का प्रयोग करते हैं, वहाँ अपने को कुछ अधिक समझा पाते हैं। यह समझ रखने की बात है कि भाषा का केवल लय या छंद में बँध जाना ही पर्याप्त नहीं होता, काव्यमय ढाँचों में ढलकर उसे स्पष्ट संकेतों की व्यंजना भी करनी होती है।

(१)

वह हमारा मित्र है
आत्मीयता के केन्द्र पर एकत्र सौरभ। वह बना
मेरे हृदय का चित्र है!
जो हृदय-सागर युगों से लहरता,
आनंद में व्याकुल चला आता
कि नीला गोल क्षण क्षण गूँजता है,

उस जलधि की श्याम लहरों पर जुड़ा आता
सघनतम श्वेत, स्वर्गिक फेन, चंचल फेन !
जिसको नित लगाने निज मुखों पर
स्वप्न की मृदु मूर्तियों सी
अप्सराएँ साँझ-प्रातः
मृदु हवा की लहर पर से सिंधु पर रख अरुण तलुए
उतर आतीं, कांतिमय नव हास लेकर।
उस जलधि की युग युगों की अमल लहरों पर
जुड़ा जो फेन,
अंतर के अतल हिल्लोल का जो बाह्य है सौंदर्य—
कोमल फेन।
जिसके आत्म-मंदिर में समर्पित,
दुःख सुखों की साँझ प्रातः जो अकेला
याद आता मुख हमें नित।

—आत्मा के मित्र मेरे

(२)

इतने प्राण, इतने हाथ, इतनी बुद्धि
इतना ज्ञान, संस्कृति और अंतः शुद्धि
इतना दिव्य, इतना भव्य, इतनी शक्ति
यह सौंदर्य, यह वैचित्र्य, ईश्वर भक्ति
इतना काव्य, इतने शब्द, इतने छंद—
जितना ढोंग, जितना भोग है निर्बन्ध
इतना गूढ़ इतना गाढ़, सुंदर जाल—
केवल एक जलता सत्य देने टाल।
छोड़ो हाय, केवल घृणा औ' दुर्गन्ध
तेरी रेशमी वह शब्द-संस्कृति अंध
देती क्रोध मुझको, खूब जलता क्रोध

तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र ।
—पूंजीवादी समाज के प्रति

मुक्तिबोध जी 'तव' 'मम' 'एकमेव' आदि शब्दों का प्रयोग प्रायः करते हैं। ये प्रयोग द्विवेदी-युग की शैली का स्मरण दिलाते हैं। मुक्तिबोध को अपनी अभिव्यक्ति में थोड़ा निखार लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

त्रिलोचन

त्रिलोचन की प्रारंभिक रचनाओं का संग्रह 'धरती' नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें प्रकृति-वर्णन और सामाजिक चेतना दोनों के गीत पाये जाते हैं। प्रेम को कवि ने प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया है। प्रेमास्पद के प्रति सहज-भाव से उसने आत्म-समर्पण कर दिया है। अन्य कवियों की प्रेम-सम्बन्धी रचनाओं में जिस मानसिक उलझन निराशा और असफलता के दर्शन होते हैं, उसका यहाँ चिन्ह तक नहीं। वर्तमान जीवन की गति-विधि पर दृष्टिपात करते हुए जो निष्कर्ष कवि ने निकाला है और उसके आधार पर जो संदेश इस देश की जनता को दिया है, वह काव्यात्मक होने के स्थान पर उपदेशात्मक अधिक हो गया है। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि त्रिलोचन किसानों के कवि हैं और उनके लिए आशा और उत्साह के बहुत से गीत उन्होंने गाए हैं।

इस कृति में आधी से अधिक रचनाएँ प्रकृति से सम्बन्ध रखती हैं। और सच बात यह है कि यदि प्रकृति के प्रति कवि ने इस ममता से बार-बार दृष्टि न डाली होती तो यह संग्रह बहुत शुष्क और स्पंदनविहीन हो जाता। प्रकृति के चित्रण भी यों विवरणात्मक ही हैं। वर्ण, गंध, गति और स्वर ही उनमें बार-बार उभर कर आए हैं; पर कवि प्रकृति की अनिर्वचनीय सुन्दरता से भी मुग्ध है और इसी से उसके आह्लादकारी रूप को प्रत्यक्ष करता हुआ हमारे मानस को भी वह कहीं-कहीं आंदोलित कर सका है।

(१)

तुमसे जो दुर्लभ मिला अमृत,
उससे अब तक "सक्रिय जीवित,
हो गई शक्ति इतनी संचित
जय-पथ पर हूँ मैं हार-हार।
बस चलता नहीं, तुम्हारी सुधि आया करती है बार बार।

(२)

सघन पीली
ऊमियों में
बोर
हरियाली
सलोनी
झूमती सरसों
प्रकंपित वात से
अपरूप सुन्दर
धूप सुन्दर।
धूप में जग रूप सुन्दर।

(३)

पूंजीवाद ने महत्त्व नष्ट कर दिया सबका
जीवन का, जन का, समाज का कला का,
बिना पूंजीवाद को मिटाये किसी तरह भी
यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता।

'धरती' की रचना के उपरांत त्रिलोचन ने एक बड़ी संख्या में सोनेट (sonet) लिखे हैं। इनमें से बहुत से आत्मकथात्मक हैं। त्रिलोचन पहले कवि हैं जिन्होंने निःसंकोच भाव से कविता में अपने जीवन के अभावों को स्वीकार किया है। जिन प्राणियों, घटनाओं और विचारों ने कवि की संवेदना को छुआ है, उनकी चर्चा खुले हृदय से उसने की है। प्यार को वह यहाँ भी एक प्राकृतिक भाव के रूप में स्वीकार करता है। ऐसे ही प्रकृति को वह मनुष्य से पृथक करके नहीं देखता। थोड़ी हास्य, व्यंग्य और चुहलबाज़ी की वृत्ति भी त्रिलोचन में पाई जाती है।

इन सोनेटों की भाषा त्रिलोचन के हृदय जैसी ही सरल है। अभिव्यक्ति को वे कलात्मक बनाने के पक्ष में नहीं हैं। उनकी रचनाओं को

पढ़ कर लगता है जैसे आप कविता नहीं पढ़ रहे, बैठे-बैठे किसी से बात-चीत कर रहे हैं।

एक सफल सोनेट देखिए—

कर्त्ता तूने जब मुझको दुनिया में भेजा,
देखा भाला खूब और जी में क्या जाने
बात आ गई, प्यार-भरा बोला फिर ले जा,
यह दुख की माला है, ये आँसू के दाने।
तू पहचानेगा, न और कोई पहचाने
चाहे। उससे दूनी शोभा बढ़ जायगी
इस छाती की जिसमें संवेदन के गाने
गूंजा करते हैं। दिल की धड़कन गायेगी
गीत प्रेम का। सारी दुनिया खिंच आयेगी
आँखों के प्रकाश में बँधकर। जा अब तू, जा।
मनुष्यता तुझसे नवीन जीवन पायेगी
घोर पराजय में भी गान विजय के तू गा।
समझ नहीं थी, तूने तो परिहास किया था।
मैंने उसको ज्यों का त्यों सच मान लिया था।

नेमिचंद्र जैन

नेमिचंद्र जैन ने व्यक्तिगत निराशा एवं व्यापक दुःख, मानसिक हलचल एवं सामाजिक संघर्ष, व्यक्तित्व की मुक्ति एवं लोक-कल्याण सभी को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है।

प्रारम्भिक रचनाओं में आकर्षण, प्रतीक्षा, मिलन, विदा और व्यथा के गीत पाए जाते हैं। आगे चलकर यह प्रणयानुभूति केवल स्मृति-स्वरूपा रह गई हैं। उदासी ने मन को आच्छादित कर लिया है और विषाद पत्थर-सा भारी बनकर हृदय पर बैठ गया है। ऐसी दशा में कभी कवि सोचता है इस प्रणयमूर्ति से उसे शांति न मिलेगी, कभी कहना चाहता है कि उसके भीतर अब कोई कोमल भावना शेष नहीं रही। अंत में वह इस निर्णय पर पहुँचता है कि जो दुःख उसने उठाया है वह व्यर्थ नहीं गया। उसी ने हृदय से वासना को धोकर भाव को गंभीरता प्रदान की, व्यक्तित्व को अधिक संवेदनशील और व्यापक बनाया, एवं पथ में बढ़ने के लिए विश्वास का सम्बल प्रदान किया—

(१)

स्नेह-मदिर संध्या में
सागर का तट कुछ आवेग भरा था
काँप रहा था।
जल से घिरे शैल-खंडों पर
सस्मित तुम बैठी थीं।
दूर कहीं पश्चिम में
सूरज डूब रहा था।
वे उदास किरणें लहरों से
आँख-मिचौनी खेल रही थीं,

जैसे लहरें तुमसे...
तुम मेरे अंतर से...

(२)

पाहुन के आने की बेला—
फूलों के सौरभ से अलि मेरा मन, मेरा तन, भर दे, ला।
उर में कुछ आतुर सा कंपन,
प्राणों में अनजाना गुंजन,
पलकों में पाहुन के पग धोने उमड़ा बूंदों का मेला।

(३)

चिर उपेक्षित गान मेरे !
भटकते बेबस युगों से ये प्रवासी प्राण मेरे।
आज मैं अब क्या सुनाऊँ,
किस निठुर के गीत गाऊँ
मूँद लेगा कौन पीछे से नयन अनजान मेरे।
रह गई बस याद बाकी,
उन दिनों की, उस विभा की,
हो गए हैं आज उर के कुंज सब सुनसान मेरे।

(४)

तुम बादल हो।
दान तुम्हारा,
मेरे अंतर की सीपी में मोती होगा;
नये स्वर्गों के फूल खिलेंगे...

प्रकृति का चित्रण प्रायः उद्दीपन के रूप में हुआ है। बरसात और बादल पर कई रचनाएँ इसी श्रेणी के अंतर्गत आयेंगी। इसमें तो कुछ कहना ही नहीं कि प्रकृति से प्रभाव ग्रहण करने में हमारी मनोदशा का भी बहुत बड़ा योग रहता है। कवि की मनोवृत्ति जिस क्षण रोमांटिक रहती है, उस समय चाँदनी रात उसे दिगन्त के आलिंगन में कसी प्रतीत होती है, पर

जब उसकी दृष्टि किसी महानगर के फुटपाथों पर पड़े दीन नागरिकों को सोते देखती है तो वही चाँदनी फीकी प्रतीत होने लगती है, यहाँ तक कि उसकी ओर देखने को भी मन नहीं करता। भावना से रंजित होने पर भिन्न-भिन्न कालों में प्रकृति कैसी प्रतीत होती है इसके दो विरोधी उदाहरण देखिए—

(१)

मोरा कहीं बोला !
कहीं चमकीं बदलियाँ
काली बदली के बीच
जैसे कोई चीर गई याद की कटार
पल भर को
उमगा किसी का मन भोला—
पुरवा के झोंके से
सिहर के
नयी दुलहिन ने
चुपके से अपने हिये का भेद खोला—
मोरा कहीं बोला !

(२)

देखता हूँ दशमी का पीला सा चाँद
थायसिस की रोगिणी के सुंदर थके मुख-सा
जहाँ तहाँ बिखरे हैं उजड़े से पेड़
बदसूरत और भौंडे
एक दो धब्बे हरियाली के झाँकते हैं
डरते शरमाते से जीवन के मरु में।
लगती है हर चीज़
सूखी-सी।

जीवन की स्थिति को चारो ओर से देखने का व्यापक दृष्टिकोण नेमिचद जी को प्रारंभ से ही मिला है। एक रात कवि को नींद नहीं आती। तब अपने सम्बंध में चिंतन करते करते वह उस मज़दूरिन के सम्बन्ध में भी सोचने लगता है जिसका पति गोली का शिकार हुआ और जिसके अभागे बच्चे इस समय टूटी खटियो पर पड़े हुए हैं; वह उस बूढ़े किसान को भी नहीं भुला पाता जिसका खेत छिन चुका है और जिसका निरपराध बेटा आज-कल जेल में बन्द है। इस प्रकार व्यक्तिगत दुःख से व्यापक दुःख की ओर उसका मन प्रायः चला जाता है। ऐसी ही एक विशिष्ट रचना और भी है। किसी युवक की प्रेमिका विदा हो रही है। प्रेमी को इस बात का दुःख है। फिर भी वह उसे पहुँचाने स्टेशन नहीं जाना चाहता, क्योंकि उसी दिन एक दूसरी प्रेमिका से बहुत दिन बाद एकांत में मिलने का उसे अलभ्य अवसर प्राप्त हो रहा है जिसे वह खोना नहीं चाहता। हृदय का यह अंत-र्द्वन्द्व बहुत मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक ढंग से चित्रित हुआ है। विदा के समय प्रेमिका की आँखें भी डबडबा आई हैं जिससे उसके हृदय की पीड़ा का अनुमान लगाया जा सकता है। पर कमाल यह है कि वह भी इसी समय इस उकताहट भरे समरस जीवन से छुटकारा पा किसी नवीन सुख का सपना देख रही है। इस प्रकार एक अंतर्द्वन्द्व के ऊपर यह दूसरा अंतर्द्वंद्व हुआ। आधुनिक प्रेम की ऐसी जटिलता और उसके खोखलेपन को ऐसी अंत-र्दृष्टि के साथ पिछले पचास वर्षों में किसी दूसरे कवि ने भी प्रस्तुत किया है, हम नहीं जानते।

फ़ुटपाथ पर सोने वाले विपिन्नों और मिलों में काम करने वाले मज़दूरों पर कवि की दृष्टि पड़ी है और उन के जीवन को यथार्थवादी दृष्टि-कोण से उसने चित्रित किया है। शोषितों के प्रति हृदय की सहानुभूति की सचाई के कारण ऐसी रचनाएँ बड़ी प्रभावशाली बन पड़ी हैं। साम्यवाद से प्रभावित होने पर भी यह कवि अपने देश की वास्तविक दशा को नहीं भुला पाया, इसीसे उसका उत्साह और आशा एक अर्थ रखते प्रतीत होते हैं। प्रगति सम्बन्धी कुछ पंक्तियाँ देखिए—

(१)

आप चाहें, या न चाहें
दीख पड़ते हैं पड़े फ़ुटपाथ पर
मैदान में सब ओर
चारों ओर सोये, लुढ़कते, गुड़मुड़ हुए
ढाँचे
निरे बस हड्डियों के !
भूख से व्याकुल तड़पते बालकों का दीन कें-कें स्वर,
बिना खाये
या कि खाकर रोग से
मरते हुए नरनारियों की रुद्ध सी चीत्कार

(२)

कहीं चीख उठा
भोंपू किसी मिल का
चले मज़दूर।
कूड़े की बदबू भरी गलियों में
गंदी तंग चालों में
पशुओं की माँदों
और पक्षियों के कोटरों से बदतर, घिनौने
उन घरों से निकले...

(३)

है क़दम मज़बूत
अब भी बढ़ रहा है गरजता
इस देश के लाखों मजूरों का
करोड़ों ही किसानों का अतुल विक्षुब्ध पारावार...
अब नहीं है लौटती खाली हमारी
मुक्ति की हुँकार;

आज प्रतिध्वनि में उधर से गूंज उठता है
गरज कर बढ़ रही, विद्युत्स्वरा से
दस्यु दल बल को कुचलती
लाल सेना की विजय का वज्र जयजयकार;
वह उधर से आ रहा है
चीन की
पोलैंड, युगोस्लाविया की
दलित जनता की विजय का स्वर
कठिन दुर्दम्य
नभ को चीरता इस पार
फिर इस बार .....

भारतभूषण अग्रवाल

'छवि के बंधन' भारतभूषण अग्रवाल की पहली कृति है जिसमें एक नवयुवक हृदय छवि के बंधन में पड़ता है। प्रभात-सा खिला रूप, धानी साड़ी, केश में गुँथा फूल, गोरी एड़ी और मधुर मुसिकान ! इच्छा होती है इस रूप को बार-बार देख, छू और बाहु बंधन में कस पाते। एक दिन ऐसा भी आता है जब पर्वत प्रांत में संध्या समय एक निर्झर के किनारे दोनों मिलते हैं। पर यह मिलन क्षणस्थायी ही रहा।

विरह में कवि गहरी वेदना का अनुभव करता है। आकर्षण-काल की एक एक मधुर स्मृति उसे तीखा दंशन दे जाती है। पीड़ा को जब वह सहन नहीं कर पाता तो अनेक प्रकार के तर्कों से मन को समझा कर इस बंधन से मुक्त होने की बात सोचता है। अंत में वह अपनी प्रेयसी को 'अंतरवासिनी' के रूप में उपलब्ध करता है।

'छवि के बंधन' में प्रेम का चित्रण बिल्कुल वैसा ही है जैसा सामान्यतः पाया जाता है। केवल विछोह की प्रतिक्रिया भिन्न प्रकार की है। यह प्रतिक्रिया ही प्रेम के प्रति कवि के दृष्टिकोण को निर्धारित करती है, 'प्रेम' को कवि 'काम' से भिन्न नहीं समझता। कुछ भी कह लीजिए, पर इसी व्यावहारिक, भौतिक और यथार्थवादी दृष्टिकोण ने आगे चलकर उसे प्रगतिवादी बनने में सहायता पहुँचाई—

जीवन का कोमल प्रथम चरण हो गया शेष,
तुम लाँघ न पाईं युग-युग की सौमित्र रेख,
तुम बाँध न पाईं शब्दों में वह समावेश,
तुम...पर अब तो उन बातों का है व्यर्थ लेख,
मिट गया तरंगाकुल प्रमाद।
तुमने न वाक्य वह पूर्ण किया, मैं संकोची

करता ही रहा द्विधा; तुमने मुझको समझा
निष्क्रिय अबोध।
मैं बढ़ा, किंतु संकोचवती ! तुम छुई-मुई
सी सिमट गई, जब अपनी आँखें चार हुईं;
मैं आज मानता हूँ मुझसे हो गई भूल।
हम दोनों ने दी प्रकृत काम
को गोपन रक्खा देकर झूठे बड़े नाम।
अंत तक न हमने किया कभी जी का विनिमय,
भय-लज्जा की बलि-वेदी पर चढ़ गया प्रणय !

'जागते रहो' में कवि प्रगतिवादी रंग में रँग जाता है। प्रारंभ में कर्म और प्रेम के बीच थोड़ा संघर्ष चित्रित है जिसमें विजय कर्म भाव की होती है। इस रचना में बौद्धिकता का स्वर कुछ अधिक प्रखर हो उठा है। 'जागते रहो' की सृष्टि द्वितीय महायुद्ध काल में हुई थी; अतः इसमें युद्ध-कालीन नारेबाज़ी और प्रचार के भी कई गीत हैं—उदाहरण के लिए 'लाल सेना का गीत' 'लाल जवानों का पानी' 'लाल निशान', 'खोलो सैकिंड फ्रंट' 'बढ़े चलो बहादुरो' आदि। देखने की बात यह है कि जहाँ उसने लेनिन के प्रति श्रद्धा प्रकट की है, वहाँ महात्मा गाँधी के सिद्धान्तों की खिल्ली उड़ाई है। 'अहिंसात्मक प्रतिकार' यदि व्यंग्य रचना न होती, तो बहुत ही दोषपूर्ण हो जाती।

इस संग्रह की सबसे शक्तिशाली रचना है 'सुखिया उठी'। इस रचना में लेखक ने मज़दूरों के जीवन की वास्तविकता को बहुत मार्मिकता से छुआ है। चुंगी के नल को लेकर जब वह अपनी बात प्रारम्भ करता है, तो यह कल्पना भी नहीं होती कि कवि अन्याय और श्रम, दरिद्रता और रोमांस, व्यंग्य और यथार्थ के सहारे इतना बड़ा आघात देगा। इस अकेली रचना में पिता, मा पुत्री और प्रेमी चार व्यक्तियों के जीवन की कहानी को इस प्रकार गूंथा गया है कि वे एक-एक करके अपना गंभीर प्रभाव हमारे मानस पर छोड़ जाते हैं। प्रचारात्मक रचनाओं के स्थान पर यदि भारत

भूषण जी ने थोड़ी सी ऐसी ही कविताएँ और लिखीं होतीं तो साहित्य और उनके बाद दोनों का बड़ा हित होता।

जिसे आशा और उत्साह से कवि प्रगतिवाद की ओर बढ़ा था, वे अंत तक बने नहीं रह पाए। संभवतः नवीन युग के आगमन की कल्पना वह जिस गति से कर रहा था, वह पूरी नहीं हो पाई। यही कारण है कि उसकी तीसरी रचना 'मुक्तिमार्ग' में हम उसे फिर द्विधा की स्थिति में पाते हैं। वह चौराहे पर खड़ा सोच रहा है कि कहाँ जाय! इतना तो फिर भी निश्चित ही है कि वह भू-प्रेमी है और स्वभाव से आशावादी। बीज, बादल और विहग पर उसकी रचनाएँ देखिए—

(१) प्यार से सींचूं तुझे ओ बीज मेरे
एक दिन तूही बनेगा फूल!
इसलिए आयास
क्यों कि होगा व्यक्त तू ही हास मधुर विकास में,
हास फुल्लोल्लास पायेगा तभी, तू समय आने दे
आज मिट्टी में मुझे तुझको बिछाने दे
जल बहाने दे।

(२) तड़ित कंपन तेज में बीते न अंतर्शक्ति,
शून्य में ही चुक न जाये सिंधु की आसक्ति,
दंभ है यह उच्चता रे, रिक्त है यह धूम,
उतर भू पर, प्रणय की हरियालियों को चूम।

(३) उन्मुक्त द्वार, पंख में शक्ति भरपूर
फिर भी ओ मेरे विहंग, तू उड़ न दूर।
उन्मुक्त द्वार, मेरे विहंग, पर उड़ न हाय!
मत कर सुवर्ण को अर्थहीन, यों निस्सहाय!
बादल, बिजली, तारे, चंदा, सूरज अनेक
हैं नभ के, पर मेरा है तू ही मात्र एक!

प्रारंभ में जो मार्ग कवि को अनिश्चित-सा दिखाई देता था, अंत

में उसे उसने पा लिया है, यह संतोष की बात है। वह मार्ग है यह कि व्यक्ति जीवन में अकेला नहीं लड़ सकता। शोषण, अन्याय और अत्याचार का अंत करने के लिए उसे अपने जैसे हताश और पिसे हुए लाखों व्यक्तियों के साथ मिलकर काम करना और लड़ना होगा। यह उपलब्धि अनुभूति के माध्यम से आई है; अतः मूल्यवान है—

कुछ दिनों से भर रही है हृदय में अति तीव्र अकुलाहट
घुट रहे हों प्राण जैसे किसी विषमय धुएँ से आक्रांत
सूझता जैसे न हो पथ विकल मन को, रुद्ध जीवन को।
ध्यान यह भी था कि मेरी राह कोई दूसरी है।
आज ही मैं जान पाया हूँ कि मेरी यातना के मूल में है वह विषमता
जो कि जगती के जनों की शत्रु है,
जो कि उनको दासता में बाँधकर उनके परिश्रम के सहारे
जुटाती है भोग और विलास के बहुमूल्य साधन
एक लघु दल के लिए;
आज ही मैं जान पाया हूँ
कि केवल मैं अकेला ही नहीं हूँ दुखी चिंता ग्रस्त
वरन् आज समस्त जीवन-स्रोत
रुद्ध हो इस विषम बाधा से विकल है फूटने
पथ खोजने के लिए
व्यस्त है गंभीर जीवन-मरण के संग्राम में;
मुक्ति के इस मार्ग में हम तुम अकेले ही नहीं हैं
हैं हमारे साथ लाखों, करोड़ों, अरबों, असंख्य
स्वदेश और विदेश के भाई......

भारत भूषण जी ने इधर कुछ नए ढंग की रचनाएँ प्रस्तुत की है जिनमें हास्य और व्यंग्य निखर कर आ रहा है।

नरेशकुमार मेहता

नरेशकुमार मेहता की इतनी कम रचनाएँ अभी प्रकाश में आई हैं कि उनके आधार पर उनके संबंध में कोई निश्चित मत व्यक्त करना कठिन है। 'दूसरा-सप्तक' में जो कविताएँ दी गई हैं उन्हें देखते हुए तो इन्हें प्रगतिवादी मानना भी कठिन है। इनके प्रगतिवादी कहलाने का एक क्षीण आधार यही हो सकता है कि 'समय देवता' में रूस और नए चीन के प्रति इन्होंने कुछ अधिक अनुराग और श्रद्धा से लिखा है। इनके परिचय में बतलाया गया है कि इन्हें दो बातें प्रिय हैं—एक, खानाबदोशों की भांति घूमना और दूसरी यह कि नरेश लिखे और 'आग लिखे।' आग से इन्होंने कहाँ लिखा है, यह हमारे देखने में अभी नहीं आया। शायद भविष्य में लिखें!

प्रेम-संबंधी इनकी एक रचना है—'चाहता मन।' यह अकाली रचना ही कवि के संबंध में बहुत कुछ कह देती है। इसमें एक युवक के हृदय-केन्द्र से उठी रोमांस-भावना प्रेम के गंभीर वृत्त को छूकर निराश लौट आती है। प्रारंभ में गोमती किनारे का सूक्ष्म वर्णन है। प्रकृति की कुछ वस्तुओं को मानवीय क्रिया-कलापो से संयुक्त करके उन्हें प्रेम की क्रीड़ा में रत दिखाया गया है। जैसे सूक्ष्म रेखाओं से युक्त किसी चित्र में यहाँ-वहाँ दो एक स्थूल रेखाएं देने से चित्र उभर आता है, वैसे ही यहाँ सूक्ष्म, कोमल और रम्य दृश्यों के बीच कुछ स्थूल दृश्य ला खड़े किए हैं जिनसे वातावरण में यथार्थता और ठोसपन आ गया है। ऐसी परिस्थिति में कवि दो प्रणयी जीवों को ला खड़ा करता है और नायिका के शरीर का वर्णन इस प्रकार करता है जिससे चित्र में वही प्रमुख हो जाय और तब अतीत की एक घटना के सहारे प्रणय-जीवन की दो भिन्न परिस्थितियाँ दिखाकर पाठक के मन को एक प्रकार की उदास मनोभूमि में छोड़ देता है—

गोमती तट
दूर पेंसिल रेख-सा वह बाँस झुरमुट
शरद दुपहर के कपोलों पर उड़ी वह धूप की लट
जल के नग्न ठंडे बदन पर कुहरा झुका
लहर पीना चाहता है।
सामने के शीत नभ में
आयरन ब्रिज की कमानी बाँह मस्जिद की बिछी है।
तुम यहाँ बैठी हुई थी अभी उस दिन।
सेब सी बन लाल
चिकने चीढ़ सी वह बाँह अपनी टेक पृथ्वी पर यहाँ।
बह गया वह नीर
जिसको पदों से तुमने छुआ था।

उषा पर कई रचनाएँ हैं। इनमें से दो एक ही सफल बन पड़ी हैं। कहीं-कहीं लंबा सांग रूपक इन्होंने बाँधा है और दूर तक उसे निभाया भी है। पर कहीं-कहीं ऐसा भी है कि पूरी रचना से कोई चित्र नहीं उठता। किरणों की कल्पना इन्होंने कहीं धेनु और कहीं अश्व-रूप में की है। ऐसे ही इंद्र, वरुण, सोम, मंत्र-पाठ आदि की चर्चा से वेदकालीन वातावरण निर्मित करने का भ्रम उत्पन्न करना चाहा है। कई रचनाओं के छंद तो मधुर हैं, पर तुकें बेतुकी हैं।

पूरी रचना पर यदि ध्यान न दिया जाय, तो बीच-बीच में दृश्यों का चित्रण संश्लिष्ट, उपयुक्त और मधुर बन पड़ा है। इन रचनाओं में इन्होंने उषा से प्रार्थना की है कि वह पृथ्वी के निवासियों को सुख, यश और श्री प्रदान करे। इससे व्यक्ति के लिए कवि के हृदय की मंगल-कामना प्रकट होती है—

(१)

नीलम वंशी में से कुंकुम के स्वर गूंज रहे!
अभी महल का चाँद

किसी आलिंगन में ही डूबा होगा,
कहीं नींद का फूल मृदुल
बाहों में मुसकाता ही होगा;
नींद भरे पथ में वैतालिक के स्वर मुखर रहे !
भिनसारे में चक्की के संग
फैल रहीं गीतों की किरनें,
पास हृदय छाया लेटी है
देख रही मोती के सपने
गीत न टूटे जीवन का यह कंगन बोल रहे !

(२)

थके गगन में उषा गान !
सुख, यश, श्री बरसाती आओ
व्योम कन्यके ! सरल नवल,
अरुण अश्व ले जायँ तुम्हें
उस सोमदेव के राजमहल,
नयन रागमय, अधर गीतमय, बने सोम का कर फिर पान !

'समय देवता' नाम का इनकी एक लंबी रचना है। इसमें इन्होंने टुंड्रा से लेकर आस्ट्रेलिया तक संसार के सभी प्रमुख देशों का उनकी विशेषताओं के साथ वर्णन किया है। इसमें कुछ प्रमुख व्यक्तियों जैसे लेनिन, हिटलर, मुसोलिनी; प्रमुख नदियो जैसे बोल्गा, स्रीक्यांग, डैन्यूब, राइन, नील, गंगा, इरावदी; प्रमुख पक्षियों जैसे नाइटेंगेल, लार्क; प्रमुख राजधानियों जैसे पेरिस, बर्लिन, बेनिस; प्रमुख वाद्ययंत्रों जैसे पियानो आदि का चर्चा की है। किसी-किसी देश की आकृति भी बतलाई है जैसे छिपकली सा जापान, डमरू जैसा अमरीका। ये वर्णन ऐसे हैं कि थोड़े भूगोल और इतिहास के ज्ञान तथा विश्व के एक मानचित्र को सामने रखकर लिखे जा सकते हैं। इस रचना में अपने काल की केवल कुछ घटनाओं की ही चर्चा है। इससे यह पता नही चलता कि इसका नाम

'भू देवता' न रखकर 'समय देवता' क्यों रखा गया है। अधिकतर वर्णन पृथ्वी के विभिन्न देशो से ही सबध रखते हैं, समय की अनंतता या 'काल-विराट् है उसका इस रचना से कोई आभास नही मिलता।

नरेशकुमार की इस बात के लिए फिर भी प्रशंसा की जायगी कि कविता के लिए उन्होंने एक बड़ा विषय चुना है और साथ ही एक व्यापक तथा समग्र दृष्टि का परिचय दिया है। मनुष्य के उज्ज्वल भविष्य में उनका विश्वास इस रचना के अंत में भी प्रकट हुआ है। रचना वर्णनात्मक है; शैली आलंकारिक; अतः धरती के प्रति कवि का विशेष रागात्मक सम्बन्ध नहीं प्रकट होता। वस्तुपरिगणन एवं कल्पना के चमत्कार में भावुकता को पनपने का वैसे भी बहुत कम अवसर मिलता है। रचना का प्रारंभ दुरूह है और नए, विचित्र एवं एक साथ बहुत से उपमानों को जुटाने की झोंक में काव्य अपना स्वाभाविक सौंदर्य वहाँ खो बैठा है। स्पष्ट है कि अत्यधिक श्रम के बिन ऐसी रचना नहीं लिखी जा सकती। आलंकारिक पच्चीकारी के झूठे मोह से यदि नरेशकुमार जी अपने कवि-व्यक्तित्व को मुक्त कर सके, तो भविष्य में उनसे अधिक सफलता की आशा की जा सकती है।

(१)

सोने की वह मेघ चील
अपने चमकीले पंखो में ले अंधकार अब बैठ गयी दिन अंडे पर।
नयी बधू की नथ का मोती चील ले गई।
गगन बीड़ से सूरज ग्वाला हांक रहा है दिन की गाएँ।
नभ का नीलापन चुप है दिशा के कंधों पर सिर धर।
इस उतराई मार्ग दिवस के सैंधव नतशिर होकर उतरे, सधे चरण से,
चमक रही पीले बालों वाली अयाल उनके गर्दन की।
साँझ, दिवस की पत्नी, अपने नील महल में बैठी कात रही है बादल।
दिशि की चारों कन्याएँ हैं मांग रहीं तारों की गुड़ियां।
अभी बादलों के परवत पर खेल रही थी दिन की लड़की स्वर्ण किरण वह

नहीं पास में पिता देख चौंकी थी, मेले में खोये बालक-सी।
दूर आलवल के पार, किरन गायों की घंटी सुनकर दौड़ रही है।
तिब्बत की ठंडी कूलें लांघ वह।
पूरब दिशि में हल्दी के रंगवाला बादल लेटा है पेड़ों के ऊपर गगन खेत में
दिन का श्वेत अश्व मार्गों के श्रम से थककर मरा पड़ा ज्यों।

(२)

यह यौवन की भूमि सोवियत,
जहाँ मनुज की, उसके श्रम की होती पूजा।
पूँजी औ, साम्राज्यवाद की तोड़ बेड़ियाँ
हाथों में नवजीवन की उल्कायें लेकर मनुज खड़ा है कुतुब सरीखा।

महेन्द्र भटनागर

महेन्द्र भटनागर के तीन कविता-संग्रह अब तक प्रकाश में आ चुके हैं—तारों के गीत, टूटती शृंखलाएं और बदलता युग।

'तारो के गीत' में कवि ने तारों को अपनी भावना का विशेष केन्द्र बनाया है। इन्हे कवि ने विभिन्न परिस्थितियो में देखा है। जो कल्पनाएं की गई हैं वे प्रायः साधारण कोटि की हैं। विचार-पक्ष में हल्की दार्शनिकता कहीं-कहीं झलकती है। भावनाएँ कई प्रकार की हैं। नक्षत्रों के दर्शन से मन की जो अवस्था होती है, कहीं-कहीं वह ज्यों की त्यों व्यक्त हुई है। इससे आगे बढ़ कर तारा के मन को आंदोलित होते हुए कवि ने देखा है। एक तीसरी स्थिति वह है जहाँ कवि भावनाओं का आरोप तारो पर करता है। उदाहरण के लिए एक स्थान पर उन्हें शोषण ज्वाला से झुलसते देखा गया है। यह भावना निश्चित रूप से युग-धर्म से प्रभावित है। इन तारा को लेकर यह विश्वास भी प्रकट किया गया है कि इनके प्रभाव से व्यक्ति के जीवन का दुःख और जग का सताप कम होता है। इससे एक ओर व्यक्ति और प्रकृति, दूसरी ओर प्रकृति और ससार के बीच पारस्परिक रागात्मक संबंध दृढ़ होता दिखाई देता है। कुछ सरल आडंबरहीन पंक्तियाँ लीजिए—

(१)

बादलों की भी न चादर
छारही विस्तृत निलय में,
और टुकड़े मेघ के भी
हैं नहीं जिसके हृदय में,
    है नहीं कोई परिधि भी
    स्वच्छ है आकाश सारा।

शून्य नभ में है चमकता
आज क्यों बस एक तारा !

(२)

क्या ये भी शोषण-ज्वाला से
झुलसाये जाते हैं प्रतिपल ?
दिखने पीड़ित, व्याकुल, दुर्बल ।
कुछ केवल कँपकर रह जाते
कुछ नभ की सीमा नाप रहे !
तारक नभ में क्यों काँप रहे ?

'टूटती शृंखलाएँ' में संक्राति-काल की रचनाएं हैं। इसमें एक जर्जर संसार के नष्ट होने और नए ससार के उगने की कामना कवि ने की है। इतना ही नही, उसने यह भी मान लिया है कि ऐसा युग प्रारंभ हो गया। अतः नव जागरण के लिए नई चेतना भरने तथा नई प्रेरणा जगाने का कार्य करता ही यहाँ कवि दिखाई देता है। ऐसा नहीं है कि इन रचनाओं में विषाद या पराजय के स्वर एकदम लुप्त हो गए हो; पर वे यथार्थ के चित्रण के लिए ही है और नगण्य से हैं। प्रमुख स्वर आशा और विश्वास का ही है। इन रचनाओं के सौंदर्य को सबसे बड़ा आघात इस बात से लगा है कि कवि के पास घुमा-फिराकर कहने को एक ही विषय है। अतः उत्साह की इस आग में एकरसता, ठंडापन और फीकापन भी पाया जाता है। साम्य, प्रगति, लाल सवेरा, और सर्वहारा शब्दों का कोई प्रभाव उस समय तक पाठकों पर नहीं पड सकता, जब तक आप इनके भीतर भरी मानवता, कल्याण-भावना, सुन्दरता और शक्ति के सरोवर में खिले भाव के ऐसे सुमन न खिला सकें जिनकी गंध से मन का कोना-कोना महक उठे। यदि ऐसा न हो, तब फिर इन शब्दों को रटने और राम-नाम रटने में कोई अंतर नहीं। इन रचनाओं में कवि में सुधारक का रूप बहुत उभर आया है। नीचे की यह रचना देखिए जिसमें इनकी कविता की भाव एवं अभिव्यंजना सम्बन्धी बहुत-सी विशेषताए खिन्च आई हैं—

में विद्रोह की चेतना भरने का स्वभाव, दूसरा घोर निराशा के पलों में भी सुंदर भविष्य का विश्वास। कुछ रचनाएं उपदेशात्मक हैं। यह उपदेश कहीं-कहीं इतना सरल और सीधा है कि उसमें काव्यत्व ढूंढ़ने का प्रयत्न व्यर्थ ही सिद्ध होगा। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ देखिए—

मनुष्य हो अगर तो फिर शराब मत पिया करो!
तुम्हारे हाथ में भरा हुआ गिलास जो,
उसे समझ ज़हर तुरन्त आज फोड़ दो,
बुझा सके कभी न दिल की हाय प्यास जो
उसे गलीज व्यर्थ जान जल्द छोड़ दो,
मनुष्य हो अगर तो फिर नशा नहीं किया करो।

साम्यवाद का रंग अब कुछ गहरा हो चला है। कवि का पक्का विश्वास है कि यह जो नया तूफान आ रहा है उसका मुख्य उद्देश्य 'साम्य की दुनिया' बसाना ही है। इसी से उत्साहित होकर वह मंगल कामना करता है—साम्य का संगीत गूंजे!

महेन्द्र भटनागर को अत्यत उत्साही और आवेशपूर्ण हृदय प्राप्त हुआ है और उन्होंने व्यापक जीवन के दुःख को देखा और पहचाना है। यह भी सत्य है कि उन्हे एक नए आलोक के दर्शन हुए हैं। लेकिन जहाँ तक उनके कवि-कर्म का संबंध है, अभी वह बहुत सफल नहीं है। उनकी रचनाओं में भाव-संबंधी गहरी मार्मिकता की बहुत कमी है। छंदों की गति शिथिल है। भाषा में वांछित स्वच्छता नहीं, फिर भी इसमें संदेह नहीं कि अन्य कवियों के साथ उनकी गणना भी जनता के कवियों में होगी।

नामवर सिंह

नामवर सिंह की कविता के प्रधान विषय हैं—गाँव, प्रकृति और प्यार। गाँव के स्वाभाविक वातावरण के बीच, उसी की भाषा में, उसके सुख-दुःख का चित्रण बड़ी सहृदयता, सूक्ष्मता और सच्चाई के साथ कवि ने किया है। ग्राम-जीवन का जितना भी परिचय इनकी रचनाओं में पाया जाता है यथातथ्य और प्रामाणिक है। गाँव के प्यार और गाँव की धरती को ममता-मोह की दृष्टि से देखने के कई प्रसंग इनकी रचनाओं में आए हैं—

धुँधुवाता अलाव, चौतरफा मोढ़ा मचिया
पड़े, गुड़गुड़ाते हुक्का कुछ खींच मिरजई
बाबा बोले लख अकास : अब मटर भी गई।
देखा : सिर पर नीम फाँक में से कचपचिया
डबडबा गई सी; कँपती हैं पत्तियाँ टहनियाँ
लपटों की आभा में तरु की उभरी छाया।
पकते गुड़ की गरम गंध ले सहसा आया
मीठा झोंका।

ग्राम के प्राकृतिक दृश्यों के साथ प्रकृति के सामान्य चित्रण में भी इनकी लेखनी की कुशलता अवर्णनीय है। संध्या और रात के एकदम अनूठे, रम्य और सद्य चित्र इनकी रचनाओं में यहाँ वहाँ बिखरे पड़े हैं।

पर सच बात यह है इन दोनों प्रकार की रचनाओं से भी अधिक रम्य इनकी रोमांस की कविताएँ हैं। प्रेम की यह अभिव्यक्ति मौन ही अधिक है; फिर भी उसमें ऐसा रस प्रवाहित हो रहा है जो शब्दों की पकड़ से परे है। प्रेमी और प्रेमिका प्रकृति में कहीं मिलते हैं—एकदम भोले पंछियों के समान। इस प्यार पर विषाद की छाया अभी नहीं पड़ी—

अटपटी बातें
नदी की साँझ
कुटकी दूब की वह अनमनी सी मार
की सीत्कार।
सहसा किरन ने
फोकस दिया उस पार
बिजली सा दिखा;
स्वर-तान में पल्लव सरीखे
पंछियों का सुभग बंदनवार
सूचीभेद्य घन के द्वार !
दीठ मुड़ने से प्रथम ही
झुक गया मुझ पर तुम्हारे बाहुओं का
विहँसता तोरण प्रतीक्षण हार।

नामवर सिंह की कुछ स्वतन्त्र रचनाएँ भी हैं—जो कभी ट्रेन के दृश्य, कभी मुर्दा रखने के स्थान, कभी बच्चों के आपस के झगड़े से उत्पन्न विषम परिस्थिति और कभी घूरे पर पड़े कागज के टुकड़े को अपना विषय बनाती हैं। इस प्रकार की रचनाओं में उन्होंने भावना को व्यापकता प्रदान की है और मानवता के पक्ष को पुष्ट किया है।

नामवर सिंह की गिनती प्रगतिवादी कवियों में की जाती है, पर अभी वे व्यापक जीवन के कवि ही अधिक प्रतीत होते हैं। वाद का रंग उन पर अधिक नहीं चढ़ा। एक स्थान पर उन्होंने कहा भी है—

दोस्त, देखते हो जो तुम अंतर्विरोध सा
मेरी कविता कविता में, वह दृष्टि-दोष है।
यहाँ एक ही सत्य सहस शब्दों में विकसा
रूप रूप में ढला एक ही नाम, तोष है।
एक बार जो लगी आग, है वही तो हँसी
कभी, कभी आँसू, ललकार कभी, बस चुप्पी।

मुझे नहीं चिंता वह केवल निजी या किसी
जन-समूह की है...

नामवर सिंह की रचनाओं में भाव-पक्ष ही प्रधान है; पर कला-पक्ष भी नगण्य नहीं। छंद में उन्होंने सोनेट के प्रयोग किए हैं जो सफल बन पड़े हैं। थोड़े बरवै भी उन्होने लिखे हैं। खड़ी बोली में बरवै कम ही लिखे गए हैं। एक काम उन्होंने यह भी किया है कि सवैया छंद को तोड़कर उसे नया ढाँचा प्रदान किया है। कवित्त के साथ भी उन्होंने ऐसा ही किया है। सवैया में तो पंक्तियाँ चार ही रहने दी हैं; पर कवित्त को बढ़ाकर पाँच और छह पंक्तियों का भी कर दिया है। चित्र इनके सजीव और संश्लिष्ट होते हैं। भाषा की दृष्टि से ग्रामीण जीवन के चित्रण में कुछ ऐसे विशिष्ट शब्दों का प्रयोग वे कर गए हैं जो सभी कहीं प्रचलित नहीं।

नया गीति-काव्य

यों तो हिंदी के सारे छंद ही किसी न किस मात्रा में संगीतात्मक हैं और इस दृष्टि से यह अंतर करना कठिन पड़ जायगा कि किस रचना को हम गेय कहें किसे अगेय। संगीतज्ञ तो चौपाई जैसे छोटे छंद को भी इतने प्रकार से गाकर दिखा देते हैं कि सुनने वाले चकित रह जाते हैं। पर प्राचीन हिंदी-काव्य में राग-रागिनियों के आधार पर चलने वाला पद-काव्य ही संगीत-प्राण है, अतः हम केवल उसे ही गेय मानते हैं। पदों के समान इस शताब्दी के प्रगीत-मुक्तक भी गेय-काव्य के अंतर्गत आते हैं। यह गीति-काव्य छायावाद-युग की विशेष देन है।

कई शताब्दियों से गीति-काव्य की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है; अतः पूछा जा सकता है कि नया गीति काव्य कहने से क्या तात्पर्य है? छायावाद युग में गीति-काव्य की एक नई शाखा फूटी और सच बात यह है कि उसका चरम विकास भी प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी के काव्य में हो गया। इस काव्य में भाव की गंभीरता, कल्पना की उत्कृष्टता, विचारों की प्रौढ़ता और कला की गरिमा अपनी चरम सीमा को छूती है। छायावाद के इन चार प्रमुख कवियों को छोड़कर अन्य कवियों के काव्य में भावना और कला का एक प्रकार से उतार ही पाया जाता है। पर इन चारों कवियों का गीति-काव्य इतनी उच्च कोटि का है कि उसकी गणना अब क्लासिक काव्य में होनी चाहिए। स्पष्ट है कि इनका अनुकरण करके कोई कवि अपनी मौलिक छाप काव्य में नहीं छोड़ सकता था, अतः गीति-काव्य की धारा ने एक नया मोड़ लिया। इस धारा में नया जल लाए श्री हरिवंशराय 'बच्चन'। 'बच्चन' ने अध्यात्म को लौकिकता, सूक्ष्मता को रूप-रंग और अस्पष्टता को स्पष्टता की कला में परिवर्तित किया। उन्होंने गीति-काव्य को नई धारा, नई अभिव्यंजना दी। इस दिशा में दो अन्य कवियों नरेन्द्र शर्मा और अंचल का सहयोग भी कम प्रशंसनीय नहीं रहा।

उत्तर-छायावाद-काल के उपरान्त गीतिकारो की जो नई परंपरा खड़ी हुई उसने प्रयोगवादियों और प्रगतिवादियों की भाँति नए युग की नई चेतना को आत्मसात किया, इसी से हम उन्हें नए गीतिकार कहते हैं। अपने क्षेत्र में इन्होंने नए विषय, नई भावनाएँ, नए विचार और नई अभिव्यंजनाएँ दीं। पर क्योंकि ये कवि अपनी पिछली काव्य-परंपरा से भी किसी न किसी रूप में सम्बद्ध हैं, अतः विचार या टेकनीक के क्षेत्र में इन्होंने कोई वैसी मौलिक क्रांति नहीं की जैसी प्रगतिवादियो और प्रयोग-वादियों ने। इनमें से कुछ के नाम ये है—तारा पांडेय, विद्यावती कोकिल, सुमित्रा कुमारी सिनहा, शंभुनाथसिंह, हंसकुमार तिवारी, चंद्रमुखी ओझा सुधा, गिरिधर गोपाल, शांति मेहरोत्रा, रमानाथ अवस्थी और जगदीश गुप्त।

नए गीत प्रेम के रस से ओतप्रोत हैं और इस प्रेम की विशेषता है इसकी लौकिकता। यह प्रेम नित्य जीवन का प्रेम है। सामान्य जीवन में जिस आकर्षण का अनुभव हम रात-दिन करते हैं उसी का वर्णन इन उद्‌गीतियों में पाया जाता है। इस दृष्टि से यह प्रेम पिछले सभी कालों से भिन्न प्रकार का है। यह न तो तलवारो की छाया में पलने वाला वीरता से उद्‌भूत प्रेम हैं, न निर्गुण-सगुण के प्रति आत्म-निवेदन, न अभिसार-मयी नायिकाओं का प्रणय, न रहस्यलोक को आलोकित करने वाला उज्ज्वल कोमल भाव। आड़ में व्यक्त होने वाला प्रेम तो यह है ही नहीं। यह तो जीवन का स्वाभाविक आकर्षण है जो शब्द-रूप पा गया है। रहस्यवादी-प्रेम की प्रतिक्रिया में इसका जन्म हुआ था, अतः यह लौकिक, यथार्थवादी और विश्वसनीय है। साम्प्रदायिक और रूढ़िवादी न होने से यह विविधता-समन्वित, मार्मिक और एक प्रकार की ताज़गी से युक्त है। यह वह प्रेम है जो व्यक्ति के जीवन का प्रधान आकर्षण है, अतः इसका परिचय सभी को है और सब इसे समझ सकते हैं।

पर यह प्रेम प्रायः सफल नहीं हो पाया है, अतः इस प्रणय-व्यापार में निराशा का एक गंभीर स्वर परिव्याप्त है। मिलन के वर्णन कम ही हैं। चिंता और विषाद का वातावरण ही अधिकतर घर किए हुए है। यहाँ

प्रत्येक प्रेमी न जाने कितनी बड़ी आशा के साथ अपने जीवन को प्रारंभ करता है और सोचता है कि प्रेम आया है तो अब जीवन आनंद और उमंग से पूर्ण हो जायगा। पर दो प्राणों के बीच कहीं समाज आ खड़ा होता है, कहीं परिस्थिति, कहीं नियति। कहीं-कहीं ऐसा भी है कि प्रेम पात्र ही मन की कोमल भावनाओं को नहीं समझ पाता। अतः वह उत्साह एक दिन हताश-भावना में बदल जाता है। इन गीतिकारों में शायद ही कोई ऐसा कवि हो जिसके व्यक्तिगत जीवन में निराशा न हो। इस प्रकार इन गीतों ने थोड़ी बहुत कुंठा के साहित्य की भी अभिवृद्धि की ही है।

इन गीतिकारों में से बहुत से ऐसे भी हैं जिन्होंने व्यथा पर विजय प्राप्त की है। जीवन की वेदना के प्रति एक प्रतिक्रिया तो होती है उसे मिटाने की। यह काम बहुत मनोबल-सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं। अधिकतर व्यक्ति तो दुःख के सामने सिर झुका देते हैं और ऐसे टूट जाते हैं कि काव्य में उसी का ताना-बाना बुनते रहते हैं। कुछ ऐसे हैं जो दुःख का उदात्तीकरण भी कर लेते हैं और इस प्रकार उसकी नोंक को कुंठित करने में सफल होते हैं। इन गीतिकारों के प्रेम के जीवन में जब निराशा आई है तब उनमें से कुछ ने तो अपने मन के भाव को भक्ति में बदल दिया है, कुछ ने जिनमें प्रायः महिलाएँ हैं वात्सल्य में अपने अभाव की पूर्ति पा ली है, कुछ अपने दुःख को दबाकर लोक मंगल और मानव मुक्ति की ओर बढ़ गए हैं और कुछ का अभाव उदासीनता में भी बदल गया है। इस प्रकार इन प्रणय-गीतों में मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री भरी पड़ी है।

प्रकृति के दर्शन से जो भावनाएँ सामान्यतः व्यक्ति के हृदय में उठती हैं, उन्हीं का वर्णन इन गीतों में मिलेगा। इस दृष्टि से यह प्रकृति-वर्णन छायावाद-कालीन प्रकृति-वर्णन से कुछ भिन्न कोटि का है। छाया-वाद-युग अपने प्रकृति-वर्णन के लिए प्रसिद्ध है। पर यहाँ भी उसका उपयोग या तो अनादि अनंत के प्रेम के लिए किया गया है या प्रतीकों के रूप में और यदि कुछ स्वतंत्र विषय चुने भी गए हैं तो उन पर कल्पना का ऐसा रम्य जाल बिछा दिया गया है कि उसका वास्तविक रूप बहुत कम

प्रत्यक्ष हो पाता है। अतः आज के गीतिकारों ने उसके प्रकृत रूप को कुछ अधिक प्रत्यक्ष किया है ऐसा कहा जा सकता है, यद्यपि यह भी सत्य है कि पिछले युग की सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि का अब एक प्रकार से अभाव ही पाया जाता है। यहाँ तो उस आनंद का ही वर्णन अधिकतर मिलेगा जो कल्पना या अन्य किसी आवरण को बीच में लाए बिना सीधे सम्पर्क से प्राप्त होता है। आज के कवि की प्रकृति आनद में झूमती दिखाई देती है। उसके दर्शन से हमारे कवियों ने कहीं-कहीं दुःख में अपूर्व सान्त्वना भी प्राप्त की है। इस प्रकार यह प्रकृति अनेक स्थलो पर आज के व्यथित कवि का विश्राम-स्थल बन गई है। जहाँ प्रकृति उदास हो जाती है, वहाँ कवि भी उदास होता पाया जाता है अर्थात् पिछले युग के समान प्रकृति कवि की भावनाओ में डूबी नहीं दिखाई देती, कवि ही प्रकृति की भावनाओं में डूबा दिखाई देता है और यह बहुत बड़ा अंतर है। हमारी दृष्टि से जहाँ आज का कवि प्रेम में अधिक स्वाभाविक धरातल पर उतर आया है वहाँ वह प्रकृति के क्षेत्र में भी अधिक स्वाभाविकता की ओर बढ़ा है।

विज्ञान की उन्नति के इस युग में ईश्वर में व्यक्ति का विश्वास वैसे ही कम होता जा रहा था कि मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा। उसने शिक्षित हृदयो से रहे-सहे ईश्वर-विश्वास को मिटाने का प्रयत्न किया। आर्थिक चिंता के कारण उपासना की परंपरा भी कुछ क्षीण हो ही चली है। फिर भी नए कवियों में अध्यात्म की भावना हमारे इन गीतिकारों में थोड़ी बहुत पाई जाती है। किसी-किसी ने तो पूजा के क्षेत्र में क्रांतिकारी विचारधारा का प्रवर्तन भी किया है जैसे कोकिल जी ने।

छायावाद-युग के कवियों और इन कवियो के राष्ट्र-प्रेम की भावनाओं में वही अंतर पाया जाता है जो किसी देश की स्वतन्त्रता के पूर्व और उसके पश्चात् उगने वाली भावनाओं में रहता है। पहले उत्सर्ग और उत्साह की भावनाएँ प्रबल थीं, अब आनंद, सौंदर्य और समृद्धि की। सामाजिकता से जो भाव प्रगतिवादी ग्रहण करते हैं, वह तो इन रचनाओं में पाया जाना सभव नहीं; लेकिन अनेक प्रकार के सुधारों के आधार पर

समाज-कल्याण की कामना ये कवि भी करते हैं। कहीं-कहीं तो क्रांति की चर्चा भी इन कवियो में पाई जाती है, पर उसका आधार अधिकतर गांधी-वाद ही हैं। जहाँ विचारों में कुछ उग्रता आ गई है वहाँ मन का रोष ही विविध रूपों में फूट पड़ा है।

मानवता की भावना का विकास इन गीतिकारो में पूर्ण रूप से हुआ है। दुःखिया के क्रंदन को इन्होंने पहचाना है और सहानुभूति पूर्वक उसके मार्मिक चित्र अंकित किए हैं। द्रवणशील हृदय से निकली ऐसी रचनाएँ पाठक को प्रभावित करने की पूरी क्षमता रखती हैं। इन रचनाओ के विषय हैं किसान, मज़दूर, विधवा, अकाल-ग्रस्त व्यक्ति आदि। नारी तो चिंतन का एक स्वतंत्र विषय ही बन गई है। कई कवियो ने उसकी वास्तविक स्थिति और पीड़ा से जानकारी का अच्छा परिचय दिया है। शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते समय यह बहुत स्वाभाविक था कि शोषकों की ओर भी हमारे कवियों की दृष्टि उठती। यहाँ फिर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि पूँजीपतियो के प्रति इन गीतिकारों का दृष्टि-कोण प्रगतिवादियों से भिन्न ही प्रकार का है। कुछ ने उनके प्रति रोष प्रकट किया है तो कुछ उन्हें समझा-बुझाकर ही रह गए हैं। मानवतावादी व्यक्ति का मार्क्सवादी होना आवश्यक नहीं है। वह तो अत्याचार और अन्याय को कहीं भी देखकर वैसे ही द्रवित हो उठता है। अतः वर्ग-संघर्ष को गति और बल न प्रदान करने पर भी इन गीतिकारो की मानवता की उदार भावना में सदेह नहीं किया जा सकता।

जहाँ तक सुख दुःख का संबंध है इन कवियों में से कुछ ने सुख की महत्ता भी स्वीकार की है और दुःख की अनिवार्यता को भी मान्यता प्रदान की है। कुछ ने उनमें संतुलन स्थापित कर दिखाया है। कुछ आशावादी हैं और दुःख को जीवन का अत्यंत नगण्य अंश मानते हैं। साथ ही कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने पहले जीवन में दुःख उठाया और फिर आशावादी बनकर आनंद की ओर बढ़ गए। इस प्रकार गीतों मे इन दोनों वृत्तियों के प्रति भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ पाई जाती हैं। कहना चाहिए कि

जिस कवि का जैसा व्यक्तित्व है उसने उसके अनुकूल ही सुख-दुःख की भावनाओं को ग्रहण किया है।

जैसे प्रत्येक युग की एक भाव धारा होती है, वैसे ही लगता है उसके विशिष्ट छंद भी होते हैं। एक युग था जब दोहा-चौपाई ही कवि के प्रिय छंद थे। इसके उपरांत पद लोक-प्रिय हुए। फिर कवित्त-सवैयों का बोलबाला रहा। तब एक युग ऐसा आया जब धीरे-धीरे प्रगीत मुक्तकों की भरमार रही। और आज के कवि ने मुक्त छद को अपनाया है। हिंदी के साहित्यिक अभी इस बात को भूले न होंगे कि छायावाद युग में मुक्त छंद कैसे उपहास और उपेक्षा का विषय बन गया था। वही मुक्त छंद आज इस सहज भाव से अपना लिया गया है कि यह पता ही नहीं चलता कि इसे प्रतिष्ठित करने में कुछ यशस्वी कवियों को कितने विरोध का सामना करना पड़ा था। यह छंद जो आज कविता के राज-सिंहासन पर आ बैठा है इसका मुख्य कारण है यह कि आज का काव्य चिंतन-प्रधान हो गया है। हमारे आज के कवि का मन जीवन की अनेक जटिल समस्याओ में उलझ कर रह गया है। गीतियाँ तो भाव-प्रधान ही हो सकती हैं, अतः भावना का ह्रास और बौद्धिकता का विकास होने से वे युग के अनुकूल नहीं रहीं। यह भी देखने की बात है कि प्रगतिवादियो और प्रयोगवादियो में अनेक प्रकार के सैद्धान्तिक विरोध होते हुए भी मुक्त छंद ग्रहण करने के सिद्धांत पर विरोध नहीं है। दोनों ने ही मुक्त छंद को मुक्त हृदय से ग्रहण किया है। अतः इस बात की पूरी आशंका है कि आज के ये गीतिकार कहीं एक प्राणवान परंपरा के अंतिम अवशेष बनकर न रह जायँ। विराट जीवन की विशाल मानसिक उलझनों और कठोर संघर्ष के ओज को अभिव्यक्ति देने की शक्ति संभवतः गीतों में नहीं है। वे तो अधिकतर कोमल भावनाओं और रम्य कल्पनाओं को वहन करने में ही सफल रहे हैं। विचारों को वहन करने की शक्ति उनमें कम है। इसी से गीतों और तुकांत छंदों के स्थान पर अब मुक्त छंद का अधिक प्रचार हो चला है। ऐसी दशा में बहुत संभव है आगे का युग गीतों का युग न हो।

तारा पांडेय

तारा पांडेय के रचना-संग्रहों के नाम हैं (१) सीकर (२) शुक पिक (३) आभा (४) वेणुकी और (५) अंतरंगिणी।

उनकी पहली ही रचना में वेदना और सरलता के दो ऐसे गुण पाए गए जिनका निर्वाह उन्होंने आज तक किया है। इस वेदना में एक प्रकार की कोमलता और सरलता में मार्मिकता निहित है। हृदय की जलन में भी धुआं नहीं, मद आलोक की शीतल आभा ही फूटती दिखाई देती है।

'शुक-पिक' में दो ही भावनाएँ प्रधान हैं—दुःख और प्रेम की। यह दुःख भी प्रेम-जन्य है; अतः प्रेम की पीड़ा का ही यहाँ प्रधान रूप से चित्रण हुआ है। प्रेम न मिला हो, ऐसा नहीं हैं, मिला, पर पल भर को; अतः अतीत की वही स्मृति बार-बार टीस बनकर उमड़ती है। इसके लिए वे कभी शय्या में मुँह छिपाकर रोने की बात कहती हैं, कहीं आकाश में प्रतिबिंबित अपने आँसुओं की जिन्हें संसार भ्रम से तारा-फूल कहता है चर्चा करती हैं। संसार द्वारा मिले दुःख के प्रति उनकी प्रतिक्रिया बड़ी स्पृहणीय है। उनमें प्रतिहिंसा की भावना जागरित होती ही नहीं।

'आभा' में भावना को अधिक व्यापक भूमि मिली है। वेदना का पुराना विषय तो ज्यो का त्यों बना हुआ है, पर उसकी अभिव्यक्ति में एक प्रकार की प्रौढ़ता आ गई है। इस कृति में प्रिय की स्मृति को ही कवयित्री ने अपना जीवन-साथी मान लिया है और इस कल्पना में संतोष पाया है कि इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में उनसे भेंट होगी। उनके व्यक्तित्व की दो नई दिशाएँ यहाँ घर और बाहर हैं। घर में भावना के निकास के लिए वात्सल्य का नया विषय मिल गया है। बच्चों का मुख देखकर वे बहुत अंश तक अपने दुःख को भुलाने का प्रयत्न करती हैं। गाँव अब

उन्हें प्रिय हो उठे हैं और जन जीवन पर भी वे कभी-कभी विचार करती पाई जाती हैं। प्रकृति को उन्होंने प्रायः भावना की भूमि के रूप में स्मरण किया है। संध्या के बहुत-से दृश्य इसी प्रसंग में आए हैं। यमुना तो उनकी स्मृति में सदैव बसी रहती है, उनके माता-पिता दोनों उसी की गोद में जो सो रहे हैं। वर्षा, पतझर और वसंत के वर्णनों के साथ गेहूँ और जौ से भरे खेतों पर भी उनकी दृष्टि गई है। पर 'आभा' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें दुःख की चर्चा के साथ सुख की भावना भी अंकुरित और पल्लवित हुई है। अब उन्हें प्रभात मधुर लगते हैं, वात मधुर लगता है, रात में चाँदनी और दिन में स्वर्ण झरता प्रतीत होता है। जीवन में नवीन उल्लास और आशा उन्हें उदित होते दिखाई देते हैं। संसार सुंदर प्रतीत होता है और लगता है चारों ओर प्रेम की वर्षा हो रही है। उनका दृष्टिकोण ही बदल गया है।

'वेणुकी' में भावना का और भी सुंदर विकास हुआ है। अब वे मानवता के हित की बात सोचती हैं। यह कृति थोड़ी विचार-प्रधान है। जीवन-मृत्यु, प्रेम-मोक्ष आदि पर इसमें वे विचार करती पाई जाती हैं। स्वप्न से अधिक सत्य की अब वे प्रेमिका हैं और अपने गीतों के माध्यम से विश्व को कोई संदेश देने की बात प्रायः सोचती हैं।

'अंतरंगिणी' के गीत भी व्यथा से भरे प्रेम के गीत हैं। प्रत्येक प्राणी अपने जीवन में एक बार एक सपना देखता है। किसी का यह सपना पूरा हो जाता है, किसी का नहीं होता। प्रेम का यह सुनहला स्वप्न जब टूटने लगता है तब हताश नारी के सामने दो ही उपाय शेष रह जाते हैं— विद्रोह का पथ या फिर त्याग का मार्ग। भारतीय नारी सामाजिक विधान की ऐसी क्रूर शृंखलाओं में जकड़ दी गई है कि वह विद्रोह भी करे तो किस बल पर! अतः वह त्याग करती है। पर जिसे वह अपना त्याग समझती है, वह वास्तव में उसकी विवशता है, क्योंकि त्याग मन से किया जाता है बे-मन से नहीं। तारा पांडेय की रचनाओं में यही विवशता कहीं त्याग, कहीं उदासी, कहीं पछतावा, कहीं आकुलता और कहीं आँसू का

रूप रखकर सामने आती है और निश्चित रूप से मन को बहुत भारी कर जाती है।

इस गायिका की समस्या औरों से कुछ भिन्न प्रकार की है। वह पत्नी और मा है और ससार जिसे सुख के नाम से पुकारता है वह सब कुछ उसे प्राप्त है। पर क्या वह सुखी हुई ?

कवयित्री ने अपनी हँसी से अपने दुःख को छिपाने का प्रयत्न किया है; पर जितना ही वह उसे छिपाती है, उतना ही वह उभरता है। हँसने का वह जितना प्रयत्न करती है, उसका मुख आँसुओं से उतना ही भरा और करुण प्रतीत होता है।

कुछ भी हो, जहाँ तक भावों का संबंध है, वहाँ तक तारा पांडेय की प्रेम भावना बहुत कोमल, बहुत निर्मल, बहुत गहरी और बहुत मर्म-स्पर्शिणी है। जहाँ तक अभिव्यक्ति का संबध है, वहाँ तक स्त्री कवियों में इतनी सरलता से भाव-चित्र खींचने वाली दूसरी लेखिका नहीं।

आपने कभी वर्षा की बाढ़ उतरने पर निर्मल जल वाली शरद ऋतु की नदी को मंद, गभीर, शांत गति से बहते हुए देखा है ? तारा पांडेय का मन और उनकी रचनाएं वैसी ही हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

(१)

फूलों का शृंगार।
आज करो प्रियतम तुम मेरा
फूलों से शृंगार।
तुम्हें पुकार रही हूं कब से !
फूल प्रतीक्षा में हैं तब से।
प्रिय तुमको करना ही होगा
अब मेरा शृंगार।
कितनी सुंदर मधुऋतु आई,
पात-पात में लाली छाई,

सफल बना दो पल भर मेरा
जीवन का शृंगार।

(२)

क्या लेकर अभिमान करूं मैं?
भूल गए पथ आने वाले,
चले गए सब जाने वाले,
उर मंदिर में दीपक वाले,
अब किसका आह्वान करूं मैं?
झूल रहे तारे अंबर में,
बूंदें छिपी हुई सागर में,
बैठा जो मेरे अंतर में,
उसकी ही पहचान करूं मैं।

(३)

नित जिस उमंग से बढ़ती जाती सरिता
निर्बाध बहा करता है जिससे निर्झर
मैं एक बूंद ही चाह रही हूँ उसकी
जीवित कर दे मृतप्राय हृदय को पल भर।
मानव कर पाता नहीं उपेक्षा मन की
बिन प्रेम नहीं जी सकता कोई भू पर।

विद्यावती कोकिल

'अंकुरिता' विद्यावती कोकिल का पहला काव्य-संग्रह है। इसमें कुछ रचनाएँ प्रकृति, कुछ प्रणय, कुछ छोटे कहे जाने वाले लोगों पर हैं। नारी और बच्चों की भावनाओं में भी कहीं-कही कवयित्री ने प्रवेश किया है। व्यापक दृष्टिकोण से लिखने पर भी अभिव्यक्ति की दृष्टि से सारे संग्रह में केवल दो-चार रचनाएँ ही सफल कही जा सकती हैं। उदाहरण के लिए 'बासी फूल' 'साधना' और 'शिशु समस्या' ऐसी ही रचनाएँ हैं। 'साधना' को तो आगे चलकर इन्होंने अपने तीसरे काव्य-संग्रह 'सुहागिन' में ले लिया है।

(१)

मा, यह मेरा फूल नहीं है!

जिसे शाम को कल तुमने इस
मेरी चोटी में गूँथा था,
जिसे दिखाने को कल मैंने
सारे घर भर को ढूंढ़ा था!

वह तो सूख गया है देखो
इसका तो रंग तूल नहीं है।

मा, यह मेरा फूल नहीं है।

(२)

मुझको आता हुआ देखकर
चिड़ियाँ क्यों उड़ जाती हैं?

मेरे सींचे हुये आम की
इन बौराई डालों पर,
कठिन गगन यात्रा से थककर
पहर-पहर सुस्ताती हैं!

(३)

आज रात शृङ्गार करूंगी !
जाऊंगी मैं मलय शिखर पर
श्वासों से समीर पी लेने,
बालों को सुरभित कर लेने
चितवन में गुरुता भर लेने,
खिले फूल-सा यौवन लेकर
शूलों के वन पार करूँगी ।

'माँ' के गीतो की प्रेरणा वात्सल्य है। प्रारम्भ में कई लोरियाँ और एक झूले का गीत है जिनमें शिशु के सुख को देख मा प्रसन्नता, गौरव और जीवन की सार्थकता का अनुभव करती है। प्रकृति और ससार अब उसे पहले से प्रियतर प्रतीत होते हैं। शिशु की भोली और स्वाभाविक क्रीड़ाओं के भी कई चित्र इन रचनाओं में हैं। एक दिन बच्चा बीमार पड़ता है। मा का हृदय आशंकाओं से भर जाता है। यहाँ तक तो 'कोकिल' जी काव्य की वास्तविक परिधि में रही हैं। पद जहाँ वे कोमल शिशु को काल से घिरा देख दार्शनिकता की उड़ानें भरने लगी हैं, वहाँ रचनाएँ रूखी, निर्जीव और अस्पष्ट हो गई हैं। कुछ सुन्दर पंक्तियाँ देखिए—

(१)

अनुपम हास भरा कोरों तक
मत कोई छलकाना,
सुख सुख से ओ लदी पवन तुम
धीरे-धीरे आना।

(२)

निंदिया बहुत ललन को प्यारी !
कौन कथा कह कर ना जाने
परियाँ उसे हँसातीं

मेरी कथा लड़खड़ाती-सी
चुंबन में रह जाती;
मैं रह जाती हूँ कहने को
मन ही मन कुछ हारी !

(३)

मेरा सपना, सपना ही हो !
पर्वत की घाटी के रथ पर
ज्वारों के घोड़ों पर चढ़ कर
जो यह काल चला आता है
मेरी कल्पित घटना ही हो।

(४)

अब मुसकादो हृदय-विहारी !
सारी रोग, बलाय और भय
शंका, तुम्हें सताने वाली
लग जाए इस तन को, मन को
प्राण ! बनो तुम चिर सुखकारी !

कोकिल जी की 'सुहागिन' में एक स्वर है भक्ति का। इस भक्ति का आधार है विश्वास। यह भावना इतनी व्यापक है कि इसमें न तो पूर्व-पश्चिम का भेद पाया जाता है और न किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता इसे छू पाई है। निराकार-साकार की भी यहाँ झंझट नहीं। प्राचीन काल की भक्ति में पाप का कोई विरोध कम से कम उससे नहीं पाया जाता, क्योंकि पापी ही भगवान की करुणा का विशेष रूप से अधिकारी बनता था। पर जिस बात का अब तक भक्ति से मेल नहीं पड़ता था, उसका अविरोध भी इस भक्ति में प्रदर्शित किया गया है। वह है वासना। यहाँ कवयित्री ने वासना को भक्ति का अंग बनाकर जीवन का भक्ति से अनिवार्य सम्बंध स्थापित कर दिया है। भक्ति को उसने जीवन के पथ में खिले फूल की गंध कहा है। इस प्रकार समस्त जीवन ही पूजा है।

(१)

कुछ सम्बंध बता जाता
मुझसे यह सब फैला जितना है,
मैं तो विश्वासों पर पलती
मेरा देखा ही कितना है ;
मुझे एक विश्वास चाहिये
सीमित और अपार मुझे क्या !
निराकार साकार मुझे क्या ?

(२)

मेरा सब सुख छीन तपों ने
किया नहीं वैरागिन,
मुझको मेरे तप-साधन ने
दिन-दिन किया सुहागिन.
मेरे भीतर इक मूरत है
पड़ती नहीं दिखाई,
बाहर आने को जो प्रतिपल
रहती है अकुलाई ।

(३)

भीतर बाहर झरी लगी है
संधि - संधि अब फूटी,
भेद-भाव की काची गागर
टूक टूक कर टूटी ।

दूसरा स्वर है लौकिकता का । कुछ रचनाओं में मा को संबोधन करके कवयित्री ने लौकिक जीवन के दुःख से बोझिल प्रश्न उठाए हैं । यद्यपि वह अंतर के भाव की तुलना में जीवन के ऐसे अभावों को उपेक्षा से देखने और हल्का सिद्ध करने का प्रयत्न करती है; तथापि इस वर्णन में ऐसी गहरी पीड़ा भर दी गई है कि छिपाए छिपती नहीं—

मा अब मेरी बानि परी।
निरख न नयनों के आँसू
तन पर छायी पियराई
मेरे पतझर में ही छिपकर
मेरी मधुऋतु आई;
तेरे ही आदर्शों की अब पुनरावृत्ति करी।
निरख न मैले वस्त्राभूषण
बिखरी अलकावलियाँ,
मेरा चिर शृङ्गार बन गईं
मेरी सब बेकलियाँ;
पुलक वेदनाओं ने ही अब मेरी माँग भरी।

तीसरा स्वर है प्रेम का। यह प्रेम निश्चित रूप से लौकिक है। क्षणिक मिलन, आकर्षण और चिर-विश्वास। आत्म-समर्पण यहाँ भी सहज-भाव से हुआ है।

तुम चले तो किंतु सब
बादल तमस के फट न पाए,
तुम चले तो किंतु सब
बंधन कफ़स के कट न पाए;
तुम चले तो किंतु मिलकर
अंग भूखे कब अघाए,
तुम चले तो किंतु मिलकर
प्राण रीते भर न पाए।

इन तीनों भावनाओं को एक साथ देखकर एक विचार तो यह उठता है कि लौकिक जीवन अभावपूर्ण रहा, यह सत्य है; किसी के प्रति अनुराग जगा, यह भी सत्य है; और सत्य यह भी है कि मन भक्ति में डूबा हुआ है। पर प्रश्न यह है कि क्या ये तीनों भावनाएं एक दूसरे से सम्बंधित नहीं हैं? हमारा अनुमान है कि हैं। हुआ यह है कि जीवन का अभाव इन्हें प्रेम की

ओर ले गया और प्रेम भक्ति की ओर। पर जो बात यहाँ स्पष्टता से समझ लेनी है वह यह कि यहाँ प्रेम और भक्ति में विरोध नहीं है। अपनी भावना से उठाकर व्यक्ति को ही इन्होंने ईश्वर बना दिया है।

आधुनिक कवयित्रियों में सुमित्राकुमारी सिनहा ऐसी हैं जो निर्भीक भाव से अपने प्रेम को स्वीकार करती हैं; तारा पांडेय ने अपनी निराशा को वात्सल्य के सुख मे भुलाने का प्रयत्न किया है; महादेवी लौकिकता से अपना अचल बचाकर निकल गई हैं; पर कोकिल जी तो प्रेम को ही भक्ति कहती हैं।

हमारे समाज में हिन्दू नारी की स्थिति अभी कुछ ऐसी है कि वह जैसा अनुभव करती है वैसा व्यक्त नहीं कर पाती। इसी से हृदय के सत्य पर वह कभी आवरण डालकर, कभी उसका कुछ रूप बदल, कर कभी अन्य नाम देकर प्रकट करने को बाध्य हुई है।

यों कोकिल जी की भावना तर्क के स्थान में विश्वास और अहं के स्थान में समर्पण की साँसो में जीवित रहने के कारण बड़ी सजल हो उठी है। उनमें कहीं-कही कबीर, मीरा और महादेवी की आत्मा विचरण करती दिखाई देती है; पर केवल इसी से उनकी तुलना इन साधकों से करना उचित दिखाई नहीं देता। इनकी सी तल्लीनता तो सचमुच हिंदी की अन्य किसी आधुनिक कवयित्री में नहीं पाई जाती।

सखि मैं अंग अंग से भीजी।

मन प्रांगण में झरी लगी है
आंखें हैं रसियानी,
मैं अपने ही घर-आँगन में
फिरती अन पहचानी,
मैं डूबी, डूबा लगता है
मुझको सकल जमाना,
रँग में डूब उठा हो जैसे
धोया वस्त्र पुराना,

सभ्य सभा में क्या जाऊँ
अब सब सारी गलमींजी।
सखि मैं . .

कोकिल जी के काव्य में भाव-विभोरता और संगीतात्मकता की अधिकता के कारण पाठक का ध्यान उनके कला-पक्ष की त्रुटियों की ओर नहीं जाता और सच बात यह है कि उनकी कुछ रचनाएँ तो इतनी मौलिक हैं कि कला की अपरिपक्वता की ओर इंगित करना वैसी ही कठोरता का काम लगता है जैसे कबीर और मीरा की कला के दोषों को गिनाना। कुछ शब्दों को तो संगीत के अनुरोध से ही ये तोड़-मरोड़ डालती हैं जैसे इक, अधार, ऐसेइ, समरथ, आशिशो आदि। 'की' के स्थान पर 'करी' लिख जाती हैं। तुकें कहीं-कहीं निश्चित रूप से अशक्त हैं। एक स्थान पर 'स्पर्शो' को जो वास्तव में चार मात्राओं का है, 'इस्पर्शों' जैसा पढ़कर छह मात्रा का मान लिया है। ऐसी भूल और भी हिंदी के कई कवियों ने 'स्मृति' आदि शब्दो को लेकर की है। इन सबसे बड़ी बात यह है कि कोकिल जी आवश्यकता पड़ने पर क्रियाएँ, विशेषण और क्रिया-विशेषण बना लेती हैं। ऐसे शब्दो में से कुछ ये हैं—निहुरते, निबुकते, कँगलाया, अचलारे, झुलसावन, रसियानी, सुधियाना आदि। इन प्रयोगो से कोकिल जी को प्रयोगवादी न समझ लेना चाहिए।

प्रभुदयाल अग्निहोत्री

श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री की प्रथम कृति 'उच्छ्‌वास' में निराशा का स्वर ही प्रबल है। संसार में अस्थिरता, देश में दीनता, जीवन में करुणा और प्यार में वेदना है, ऐसा उनका अनुभव रहा। कुछ ऐसे ही दृष्टिकोण से प्रकृति की वस्तुएँ भी रंजित हैं। मानव-जाति के विकास के इतिहास का विवरण देते हुए उन्होंने यद्यपि मनुष्य की शक्ति का जय-घोष किया है; पर अंत में उसके प्रयत्नों में भी उन्हें अपूर्णता ही दिखाई दी हैं। इन रचनाओं में भावना और चिंतन दोनो को साथ-साथ खुलने का अवकाश मिला है। स्वभाव से कवि आशावादी है। एक ओर है उसका अनुभव, दूसरी ओर है उसका विश्वास भरा स्वभाव। उसके इस अनुभव से उसका उज्ज्वल संस्कार बराबर संघर्ष करता दिखाई देता है।

पीली सरसों नहीं, क्लेश से
हुआ देश का आनन पीत;
पत्र स्पंदन नहीं, काँपती
नग्न देह पाकर चिर शीत

यहाँ वायु के सनन शब्द में
मिला अनाथों का चीत्कार;
मुक्ताओं से नहीं ओसकण
क्षुधितों के नयनों की धार।

करुण काकली में कोकिल की
कृषकों के हृदयों की हूक;
अलि गुंजन में छिपा हुआ है
मज़दूरों का क्रंदन मूक।

मेरा हृदय खिलेगा, होगा
सकल निराशाओं का अंत;
भारत-भू पर छा जायेगा
जब सुरभीला सुखद वसंत।

'अरुणिमा' की कुछ रचनाएँ उत्साह से संबध रखती हैं। राष्ट्रीय कविताएँ इसी भाव के अंतर्गत आयेंगी। कुछ रचनाएँ करुणा और उत्साह की मिली-जुली अनुभूति जगाती हैं। 'बंदी' और 'किसान' ऐसी ही रचनाएँ हैं। शोषकों के प्रति आक्रोश भी इनकी किसी-किसी रचना में पाया जाता है। नई दिशा की ओर बढ़ते हुए मानव की महत्ता के गीत इन्होंने इस कृति में भी गाए हैं। प्रेम संबंधी रचनाओं में विरह और मिलन दोनों के वर्णन स्वाभाविक बन पड़े हैं। इस संग्रह में बाल-विधवा के जीवन से संबंध रखने वाली एक रचना अत्यधिक मार्मिक और सफल बन पड़ी है। ध्यान देने की बात यह है कि व्यापक जीवन की विषमता के बीच तो ये आशा का दीप जलाने में समर्थ रहे हैं; पर व्यक्तिगत जीवन की मधुरता के बीच इन्हें अंत में उदासी और एकाकीपन की भावना घेर लेती हैं।

(१)

जाओ कह दो श्रीमानों से
भूपालों से, हों सावधान;
युग-युग की भूखी ज्वाल लिए
आता है विध्वंसक किसान।

(२)

क्या हुआ ये तन कभी मिलने न पाये,
क्या हुआ ये मन कभी खिलने न पाये,
क्या हुआ हम रह गए मन मार साथी,
प्राण तुम पर हो गए बलिहार साथी।

पर अग्निहोत्री जी की प्रतिभा का वास्तविक प्रस्फुटन इधर की नई रचनाओं में ही हो पाया है। इस नवीन स्वर-संधान में नया दर्द न जाने

कहाँ से उमड़कर आ गया है। भाव नई मार्मिकता और गंभीरता, कल्पना नई चित्रात्मकता और रम्यता, भाषा नई सांकेतिकता और व्यंजना तथा छंद नया संगीत और प्रवाह लेकर आए हैं।

बहुत दिनों से मैंने जी भर गाया कोई गीत नहीं है।
अब भी मन भूखा-भूखा है. प्राणों में अनुरक्ति रही है,
रीत-रीत भरती रहती नित नित नव साधों की गगरी है,
नयनों में बरसात बहुत है औ गीतों में दाह बहुत है,
इन गीतों का बोझ सँभाले ऐसा कोई मीत नहीं है।
कोकिल और कंठ दोनों हैं पर अब वह मधुमास नहीं है,
मंदिर और मूर्ति अचल है पर वैसा विश्वास नहीं है,
अब मैं पथ के शूल-शूल पर फूलों के परिधान चढ़ाता
चलता हूँ, पर जान रहा हूँ यह जीवन की जीत नहीं है।
जीवन के जलते पृष्ठों ने एक सरल-सी याद न खोयी,
जैसे जले दिया की बाती चार पहर निःस्नेह सँजोयी,
मेरे गीतों के आँचल में शूल फूल से मृदु बन जाते,
और कौन-सा लघु रजकण जो पावन और पुनीत नहीं है।

सुमित्राकुमारी सिनहा

सुमित्राकुमारी सिनहा के चार गीत-सग्रह अब तक प्रकाशित हुए हैं—(१) विहाग (२) आशापर्व (३) पथिनी और बोलों के देवता ।

इन सग्रहो में रचनाओ का मुख्य विषय प्रेम है । सुमित्रा जी की प्रेम कहानी इतनी सी है कि जिस व्यक्ति को ये प्रेम करती थीं उससे एक दिन कुछ पलो के लिए सहसा भेंट होती है और फिर वह लौट जाता है । पल भर का वह मिलन इनके जीवन में विलक्षण परिवर्तन कर जाता है । इस प्रेमी को उन्होने बटोही, पथी, परदेशी, प्रवासी, दूर देश के वासी आदि कहा है । मिलने पर बटोही के भी नयन अतीत की स्मृतियो के कारण आर्द्र हो उठते हैं, पर वह कुछ बोलता नही । सुरभित समीर के समान, भाव की लहर के समान, उमड़ी घटा के समान प्यार का यह पल बीत जाता है । चले जाने पर प्रेमिका सोचती ही रह जाती है कि उसका परदेशी न जाने कहाँ होगा । कही होगा तो उसकी याद भी करता होगा या नही ! उससे एक बार फिर लौटने की विनय वह करती है । कभी सोचती है कि जब उन्हें जाना ही था तो पल भर रुकने के लिए क्यों आए ? फिर मन को समझाती है नही, जाने के लिए ही वे आए थे । इसके उपरांत भावना को व्यापकता प्रदान करती हुई उसकी छवि वह कण-कण में देखने लगती है ।

'विहाग' में जिस प्रेमी को सुमित्रा जी ने केवल अपने सम्बन्ध से ही देखा था, 'आशापर्व' में उसी को लोक के बीच प्रतिष्ठित कर्म पथ पर आरूढ़ पाया है । अपने दुःख की चर्चा यहाँ भी कम नही है; परन्तु उनकी यह भावना कि वे प्रिय की गति में विघ्न न बनकर उसे प्रेरणा देंगी, बड़ी स्पृहणीय प्रतीत होती है । 'आशा पर्व' में व्यथा की चर्चा होते हुए भी निराशा का कोई स्वर नहीं है ।

'पंथिनी' में दोनों के पारस्परिक संबंध को और ही प्रकार से व्यक्त

किया गया है। दोनों के पथ भिन्न हैं, साधन भिन्न हैं, लक्ष्य भिन्न हैं। समानता इतनी ही है कि दोनों गतिवान हैं, बीच-बीच में वे मिल लेते हैं जिससे प्रेमिका की साधना को बल मिलता है। प्रेमी अब कुछ पिघलता प्रतीत होता है; पर प्रेमिका उसे महान् ही देखना चाहती है; अतः उसकी दुर्बलता को प्रश्रय देना पसंद नहीं करती। यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ अभाव ही महत्वपूर्ण हो जाता है।

ऐसी स्थिति में जहाँ मिलन पल भर का हो और वियोग जीवन भर का, प्रेम को सँभालना बहुत कठिन काम है। श्रीमती सिनहा के मन ने इसी स्थिति को पार किया है। ऐसी दशा में कभी अपने दुःख की चर्चा की जाती है, कभी प्रेमी को उलाहने देने को मन करता है और कभी सुखमय अतीत की स्मृति जगने पर समस्त शरीर सिहर उठता है।

प्रेम का जीवन व्यतीत करने के साथ कवयित्री ने स्वयं प्यार को भी चिंतन का एक विषय बनाया है। उसका कहना है कि यह ससार प्यार के आधार पर ही स्थित है। सफल जीवन का अर्थ है मन चाहा प्यार मिलना। ज्ञान दंभ का दूसरा नाम है। जब तक संसार में यौवन रहेगा, तब तक प्यार रहेगा। यह हो नहीं सकता कि व्यक्ति अपने चारो ओर प्यार का खेल देखे और उससे प्रभावित न हो। पर प्यार होता है अत्यंत आवेशपूर्ण। और जब प्यार का स्वप्न सत्य से टकराता है तो चूर-चूर हो जाता है। फिर भी प्रेम में सफलता मिले या न मिले, प्रेमी प्यार करना नहीं छोड़ सकता।

सुमित्राकुमारी सिनहा ने केवल प्रेम पर लिखा हो, ऐसी बात नहीं है। 'विहाग' के अंत में ही एक भिन्न प्रकार का स्वर छेड़ा गया है। जिस देश में दुःख का साम्राज्य हो, कंकालों के तन हों, मरघट का दृश्य चारों ओर छाया हो, वहाँ प्रेम के गाने गाना, मधुमास मनाना, वीणा की तान उठाना, स्वप्नों के महल सजाना क्या शोभा देता है? 'आशा पर्व' में भी इसी भावना का एक हिंडोला-गीत है। पूंजीपतियों के प्रति रोष और सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति किसी-किसी रचना में पाई जाती है। ऐसी

रचनाएं युग-जागरण की परिचायिका है। 'पंथिनी' में महात्मा गांधी की हत्या पर भी कई शोक-गीत श्रीमती सिनहा ने लिखे हैं जिनमें महात्मा जी की मृत्यु को एक दिव्यात्मा द्वारा मानवता को रक्त का अर्घ्य-दान देना बतलाया गया है। श्रीमती सिनहा की मूल वृत्ति वैसे अभी प्रेम की ही है। इन थोड़ी-सी रचनाओं में उनका हृदय रमता हुआ दिखाई नहीं देता।

प्रकृति को सुमित्राकुमारी सिनहा ने प्रारंभ में प्रणय-रंजित हृदय के संबंध से ही देखा है। उषा को मुस्कराते, बादलों को घुमड़ते, शीतल समीर को बहते, कोकिल को कूकते देख वे उनके प्रभाव से बचना चाहती हैं। इसी प्रकार अपने प्रेमी जीवन और प्रकृति के जीवन की तुलना करती हुई वे कहती हैं कि प्रकृति को जहाँ रोने का अधिकार है, वहाँ मनुष्य से यह अधिकार भी छीन लिया गया है। कभी वर्षा को आते देख उन्हें अपने बचपन की याद आती है और कहीं इस बात पर पछतावा होता है कि जहाँ प्रकृति का वैभव बार-बार लौटता है, वहाँ प्राणी का यौवन जरा में परिवर्तित हो जाता है। शरद और वसंत के वर्णन भी प्रेम की भावनाओं को उभारने वाले हैं। 'आशा पर्व' की प्रकृति का चित्रण भिन्न प्रकार का है। उसमें आनंद का स्वर परिव्याप्त है। वहाँ चाहे वर्षा के वर्णन हों चाहे वसंत के, चाहे रजनीगंधा के और चाहे महुआ बीनने के, एक प्रकार की मस्ती पाई जाती है। 'पंथिनी' में भी ऋतुओं के वर्णन कम नहीं हैं। ऐसे समस्त वर्णनों में अंधकार पर प्रकाश, निराशा पर आशा और दुःख पर आनंद का विजय-घोष सुनाई देता है।

सुमित्राकुमारी सिनहा प्रेम के संबंध में जैसा अनुभव करती हैं, उसे वैसे ही व्यक्त करने में सफल हुई हैं। उनके काव्य में कला यद्यपि धीरे-धीरे कोमल और मधुर होती गई है; पर उनका ध्यान कला से अधिक भावना की ओर ही प्रतीत होता है। यही कारण है कि हृदय की बात बहुत कुछ सीधे-सीधे कह दी गई है। व्यंजना उसमें कम है। 'विहाग' में तो भाषा के संबंध में थोड़ी असावधानी भी कहीं-कहीं पाई जाती है। कहीं 'न' के स्थान पर 'ना' का प्रयोग है, कहीं 'हिय', 'परस', 'परसन', 'दरश' आदि

आए हैं। 'आशा पर्व' की भाषा पिछली रचना की अपेक्षा अधिक काव्य-मय और सरस है। 'पंथिनी' की अभिव्यंजना प्रौढ़ है; पर भाव की विरलता वहाँ विद्यमान है।

कुछ रचनाओं के विशिष्ट अंश देखिए—

(१)

रात पूनम की सुंदर है !
सुवासित कुंतल हैं बिखरे
ज्योत्स्ना के नव फूल झरे
धरा के ज्यों सपने निखरे
और सुधियों के दल उतरे
चातकी का मुखरित स्वर है।
रात पूनम की सुंदर है।

(२)

राह न रोको।
चली चलूँगी
आह्वानों को नहीं छलूँगी, उमड़ा सिंधु अथाह न रोको।
राह न रोको।
निशि अँधियारी
सिर पर मेरे बोझा भारी, मिले न मंज़िल चाह न रोको।
राह न रोको।
जो कुछ पाया
जा न सकेगा उसे भुलाया, सुधि की शेष उछाह न रोको।

(३)

जी करता है आज भुला दूँ
सपनों का वह दर्द पुराना।

नन्हीं शिखा प्रणय की
अंजन लहरों में कब तक बल पाए?
साँसों की ठंडी चिनगारी
करुणा में क्या आग लगाए?
काली सघन घटा से निर्मल
मुक्त गगन मन भी घिर आए।
चंद-बिंब मानस-दर्पण में
कब तक संभव तिर-तिर आए?
बँधी हुई रेखा पर कब तक
मचलेगा यह प्यार उभर कर,
मरु उत्तप्त रेणु में क्या
बरसाऊं जलमय चितवन के शर?
आज उतर नभचुंबी महलों
पर से निम्न धरा पर आना।

'बोलों के देवता' में इनकी कुछ नई रचनाएँ संगृहीत हैं। पिछले काव्य-ग्रंथों के साथ इस संग्रह को मिलाकर देखने से जो पहली बात लक्षित होती है वह यह है कि इनकी प्रेम-भावना में धीरे-धीरे विकास हुआ है और 'बोलों के देवता' के प्रेम को हम परिपक्वावस्था का प्रेम कह सकते हैं। यहाँ भाव का स्थान चिंतन, आवेग का संयम और उष्णता का संकेत ने ले लिया है।

अनास्था और हताश-भावना के इस युग में आस्था और आशा के स्वरों का अपना अलग स्थान है और केवल इसी दृष्टि से 'बोलो के देवता' एक मूल्यवान् कृति है। इस कृति की महत्ता इसलिए और भी बढ़ जाती है कि इसमें मुखरित विश्वास के स्वर किसी बाह्य प्रतिक्रिया के रूप में नहीं व्यक्त हुए, वरन् वे कवयित्री की प्रणय-भावना के विकास के अनिवार्य स्वर बनकर आए हैं।

इस कृति में प्रेम को एक बहुत बड़ी शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया

गया है, यहाँ तक कि जब कवयित्री प्रणय की व्यक्तिगत परिधि से हटकर धरती के दुःख दैन्य, संघर्ष पराजय और उलझन-असंतोष पर दृष्टि डालती है तब भी उसे संसार की समस्त समस्याओं का समाधान एकमात्र यह प्यार ही प्रतीत होता है। लेकिन एक विशिष्ट व्यक्ति के प्यार और धरती के प्यार में जो अन्तर है वह इन कविताओं से स्पष्ट नहीं होता। श्रीमती सिनहा को अब प्रेम की इस सीमित परिधि से बाहर आकर अपने व्यक्तित्व को काव्य की व्यापक भूमि पर प्रतिष्ठित करना चाहिए।

कुछ पंक्तियाँ देखिए—

(१)

तुम दाह घृणा का लेकर मन में बैठे हो
खिल चटक चाँदनी रातें बीती जाती हैं।
चीनांशुक-पट से झाँक रही है प्रकृति-वधू
कर्पूरी मुखड़ा फूलों की मुसिकान-भरा,
यह रूप-ज्योति तुम देख नहीं क्यों पाते हो?
आनंद-निमंत्रण प्राणों का कण-कण बिखरा,
तुम चिंता के अंगार लिए क्यों बैठे हो?
साधों की मीठी घातें बीती जाती हैं।

(२)

तुम्हारे प्यार के दो चार क्षण पाकर।
न जानी राह की दूरी,
थकन दुख दर्द सब भूले
खिली ज्यों फूल खिलता है—
तुम्हारी चाँदनी में डूब उतराकर।

(३)

मैं हर मंदिर के पट पर अर्घ्य चढ़ाती हूँ
भगवान एक पर मेरा है।

मंदिर मंदिर में भेद न कुछ मैं पाती,
है सिद्धि जहाँ साधना वहीं पर आती,
मन की महिमा जिसके आगे झुक जाती,
वाणी वर का अभिषेक वहीं पर पाती,
मैं हर पूजन अर्चन पर शीश झुकाती हूँ
अभिमान एक पर मेरा है ।

शकुंतला सिरोठिया

श्रीमती शकुंतला सिरोठिया के गीतों का एक संग्रह 'दीप' नाम से प्रकाशित हुआ है। उनके दूसरे अप्रकाशित संग्रह का नाम है—उलझन!

'दीप' में व्यक्तिपरक और वस्तुपरक दोनों प्रकार की रचनाएं पाई जाती हैं। व्यक्तिपरक रचनाओं में मूल प्रवृत्ति प्रेम की ही है। प्रेम की इस अनुभूति में भी निराशा, असफलता, पीड़ा, अंधकार, सूनेपन और काँटों की चर्चा बहुत हुई है—यद्यपि इस सारी विफलता को एक प्रकार का आशावाद ढके हुए है। कवयित्री ने अपने प्रियतम को 'सत्य, शिव, सुन्दर' का प्रतीक माना है। अपने प्रेम का प्रतिदान, जैसा उसे मिलना चाहिए था, नहीं मिला। इस ओर उसका ध्यान तो है; पर चिंता अधिक नहीं प्रतीत होती। जो कमी है, उसे अपने हृदय के दान से उसने पूरा कर लिया है।

कवयित्री का जीवन निराशापूर्ण है और मन उसका प्रसन्नता चाहता है; अतः एक प्रकार का मानसिक संघर्ष खड़ा हो गया है जो गीतों में रस और चमत्कार उत्पन्न करता है। प्रेम को सिरोठिया जी ने एक ऐसी अनिवार्य और सहज अनुभूति माना है जिसके साथ पाप-पुण्य का प्रश्न उठाना व्यर्थ है—

(१)

ठहरो, दीप जला लेने दो
क्या दुनिया में पाप पुण्य है
इसे न अब तक जान सकी हूँ,
नारी- हूँ, देवी बन जाऊँ
यह सिद्धान्त न मान सकी हूँ;
मुझे स्वर्ग की चाह नहीं,
भू पर ही स्वर्ग बसा लेने दो।

(२)

मैं जान न पाई जग को
मुझको जान न पाया कोई।
कितनी सुन्दर यह सृष्टि
भव्य यह प्रकृति अरे सुन्दरतम
जग अपना प्रिय कहते सब
इसको पाप नहीं कहते हम
मानव को करना प्यार कहाँ
का पाप बता दे कोई ?

सुख-दुःख तो सभी के जीवन में आते हैं; अतः वे इतने महत्वपूर्ण नहीं हैं, महत्वपूर्ण है उनके प्रति हमारा दृष्टिकोण। इस सम्बन्ध में शकुंतला जी ने बड़े साहस का परिचय दिया है। उनकी बहुत-सी रचनाएँ स्पष्ट रूप से उनकी आत्म-शक्ति, आत्म-विश्वास और आत्म-निर्भरता का परिचय देती हैं। 'उलझन' के गीतों में तो उनका व्यक्तित्व बहुत सशक्त होकर सामने आता है। आत्म-निवेदन तो वहाँ भी बहुत आर्द्र-भाषा में है; पर बाधाओं के प्रति उपेक्षा अब बढ़ चली है। न केवल इतना कि वे किसी का सहारा अब नहीं ढूँढ़तीं, वरन् इससे आगे बढ़कर वे किसी की प्रेरणा बनना चाहती हैं और उन्हें इस बात का पता है कि ऐसी प्रेरणा देने की क्षमता उनमें है—

ओ माँझी तू खे चल नैया, मैं आँचल से छाँह करूँगी।
ऊपर नभ में धूप कड़कती
पर नीचे जल का संबल है,
तेरी बाहु-शक्ति में माँझी
मेरा भी तो संचित बल है;
हार न, उठ, पतवार उठाले, मैं साहस संचार करूँगी।

वस्तुपरक रचनाओं में कोयल, बुलबुल या शलभ को समदुःख भोगी होने के नाते इन्होंने चुना है; पर इनकी भावना की परिधि यहीं तक

सीमित नहीं है। बंगाल के अकाल और देश पर भी इन्होंने पूरी सहानुभूति और ममता से लिखा है। 'अनुभूति' शीर्षक से मुक्त छंद में इनकी एक रचना बड़ी प्रभावशालिनी बन पड़ी है। इसमें इन्होंने धनी व्यक्तियों के ओछे व्यवहार और स्वभाव का परिचय एक अनुभूत घटना के आधार पर दिया है।

शकुंतला जी की रचनाओं में भावना की गहराई के साथ आत्म-विश्लेषण और आत्म-प्रक्षेपण की प्रवृत्ति पाई जाती है। छंद निर्दोष हैं। केवल ऐसे स्थानों पर जहाँ सिने-संगीत का प्रभाव उन पर पड़ गया है, मात्राओं का ध्यान उन्हें नहीं रहा है, यद्यपि उस कमी को उन्होंने लय से भरने का प्रयत्न किया है।

शंभूनाथ सिंह

शभूनाथ सिंह के पाँच काव्य-सग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं—(१) रूप-रश्मि (२) छायालोक (३) उदयाचल (४) दिवालोक और (५) मन्वन्तर।

प्रारंभिक रचनाए अधिकर प्रेम से सम्बंधित हैं। प्रेम का जीवन थोड़े दिन व्यतीत कर कवि उसे खो देता है और तब अभाव का स्वर प्रबल हो उठता है। यह अभाव अपनी अभिव्यक्ति चाहता है जिससे इनके गीतो का जन्म होता है। चिंतन अधिकतर स्मृति-रूप मे चला है, इसी से स्वर में धीरे-धीरे गंभीरता आ गई है और व्यथा में मधुरता भर गई है। अपने हृदय की आग के कारण यों कभी-कभी कवि को सारी सृष्टि में आग लगी प्रतीत होती है। इनका प्यार अधिकतर विरह में ही पला और पल्लवित हुआ है। यही कारण है कि इनके गीतों में अभाव की भावना ही प्रबल है। आगे चलकर इन्होंने सुख-दुःख में सामंजस्य स्थापित कर लिया है—

जीवन एक है अभिशाप
पर वरदान भी तो है!
जिसका पंक में है मूल
उसका सरस कितना फूल
जीवन है उसी का नाम
कहते हैं जिसे हम भूल
कहते हैं जिसे दुख-राग
वह मधुगान भी तो है!

प्रेम में असफल होने पर भी कवि की भावनाओं का विकास अज्ञात रूप से प्रेम की छाया में ही होता रहा है। रूप-चिंतन से तो वह अपना छुटकारा कभी नहीं पा सका। इस रूप की कल्पना अनेक स्थानों पर अतिरंजित रूप में हुई है—बहुत कुछ छायावादी ढंग से—

(१)

मैं तुम्हारी छाँह में चलता रहा, तुमने न जाना ?
सच, कभी तुमने न जाना ?
रूप की किरणें तुम्हारी
ले सदा मैं मुस्कराया,
याद के बादल तुम्हारे
ले नयन अपना सजाया;
मैं तुम्हारे स्वप्न में पलता रहा, तुमने न जाना ?
सच, कभी, तुमने न जाना ?

(२)

प्राण तुम दूर भी
प्राण तुम पास भी
तुम मगन की परी
तुम उषा सुंदरी
तुम धरा रूप सर
में किरण की तरी
रूप बंदी हुए
इस विफल प्राण की
प्राण, तुम मुक्ति भी
प्राण, तुम पाश भी ।

मन की एक तीसरी स्थिति वह है जब कवि अतीत की विषादमयी स्मृति को जीवन की मधुरता में बदलना चाहता है और एक दिन वास्तव में ऐसा आता है जब रेशमी गीतों से छुटकारा पा अपने मन को वह इस स्थिति में पाता है कि संसार के लिए जागरण के गीत गा सके। अपनी रचनाओं में शंभूनाथ सिंह अपने सुख-दुःख से ऊपर उठकर जीवन और जगत के सम्बंध में सोचने लगे हैं, यह कम महत्व की बात नहीं है। उनकी निराशा ने उन्हें अकर्मण्य नहीं बनाया । उनके मन में यह कल्याणी

भावना जागरित हुई कि दूसरो के लिए उन्हें उत्सर्ग करना चाहिए जिससे उन जैसे निराश व्यक्ति उनका सहारा प्राप्त कर टूटने से बच जायँ—

(१)

मुखरित कर मधुर गान
मेरे मन कोई।
बीते यह गहन रात,
अब न बहे व्यथा वात,
झुलसे जीवन वन में
लहराये मधुर प्रात,
रह न जाय बीती निशि
का बंधन कोई।
सौरभ ले बहे पवन
उड़ें विहग ले जीवन,
कलिका उर में स्पन्दन
भर दे अलि का गुंजन,
रह न जाय गति लय से
रहित चरण कोई।

(२)

मेरे जागरण के गान!
ये न स्वप्न प्रदेश वाले,
ये न मधु के देश वाले,
ये न रेशम वेश वाले,
ये उषा के दान, निशि की
भूल की पहचान।

व्यक्तिगत जीवन के कुहासे से निकल आशा के आलोक में चरण रखने के उपरांत कवि ने मन की स्वस्थता प्राप्त की। इस स्वस्थता का उपयोग उसने अपने चारों ओर के जीवन पर दृष्टि डालकर किया।

पर व्यंग्य करने के साथ जो अपने देश को भी उसने घसीट लिया है, वह बहुत अच्छा नहीं लगता। राजनीतिक मतभेद की बात यदि राजनीति के क्षेत्र तक ही सीमित रहे तो अच्छा है। काव्य के क्षेत्र पर उसकी मलिन छाया डालना ठीक नहीं।

आज सत्तर वर्ष पूरे हो गए
तूफ़ान वाली ज़िंदगी के!
लाल सत्तर वर्ष !!! ··
साथी! तुम करो स्वीकार
भारतवर्ष के [फ़ासिस्ट नेहरू के
शिकंजे में पड़ा जो छटपटाता (?)]
एक मध्यम वर्ग के
श्रद्धालु कवि का
लाल लाल सलाम!
सत्तर लाल लाल सलाम !!

और मरियल देश भारतवर्ष यह
कोड़े इसे जितने लगाओ
किंतु आगे यह न बढ़ना जानता है
और जो इसको जरा पुचकार देते
पीठ पर थपकी लगाते
और डालर पौंड वाली घास के सपने दिखाते
यह उन्हीं के साथ में है दौड़ जाता।
वे सवारी गाँठते यह हिनहिनाता
मैं उसे कुछ भी करूँ, कुछ भी कहूँ
सुनता नहीं
बेशर्म!

कवि जनता के साथ है, इसमें तो कोई संदेह कर ही नहीं सकता। शंभूनाथ सिंह ने प्रत्येक युग में जनता की जैसी स्थित रही है, ऐतिहासिक

क्रम से उसे स्पष्ट करके पाठकों के सामने रखा है। अपने गाँव से लेकर विश्व भर की सामयिक समस्याओं पर उन्होंने अपने विचार प्रकट किए हैं। उनके सोचने के ढग से मतभेद हो सकता है; पर सोचना तो वह है ही और ईमानदारी से सोचना है। गाँव में मुंशियों आदि के अत्याचार का इन्होंने बड़ा खुला वर्णन किया है और सामाजिक व्यवस्था की डाँवाडोल स्थिति का चित्रण भी कम प्रभावोत्पादक नहीं। इन वर्णनों का केवल एक ही दोष है कि वे विवरणात्मक अधिक हैं। व्यंग्य का सहारा इन रचनाओं में भी बराबर लिया गया है—

और इस गुलजारसिंह के भी चचा सीतासरन हैं!
आज वे कहते स्वयं को कांग्रेसी
जब कभी होती कहीं कोई सभा
तब पहन खद्दर की
धराऊ धुली धोती और कुर्त्ता—
[वे नहीं हैं आदतन खादी पहनते
बस सभाओं के लिए ही
एक सेट बनवा लिया है।]

मानव का एक पूर्ण चित्र देने का प्रयत्न इन्होंने किया है। उसके दोनो रूप कवि ने पाठक के सामने रखे हैं। एक है उसका शोषित व्यक्ति का रूप। वह हमारे सामने है ही। पर उसका दूसरा रूप भी है। वह शक्ति का स्रोत है। यह वही है जिसने प्रकृति पर विजय प्राप्त की है। चित्र का यह अंश आशावाद से आलोकित है। सारी सृष्टि में बिखरे रहने पर भी मानव-जाति मूलतः एक है। उसके टुकड़े नहीं किए जा सकते। स्वभाव से मानव चिर विद्रोही है। वह निरंतर संघर्ष करने और आगे बढ़ने के लिए है। इस प्रकार मानव की मूल विशेषताएँ हैं—अखंडता, चिर विद्रोहीपन, समता और निर्माण शक्ति।

पोटली में बाँध पत्नी-पुत्र का मधुप्यार
कोई जा रहा है

श्रांत विजड़ित पाँव, सुधि में मग्न
घर की ओर कोई आ रहा है
नत नयन निष्प्रभ उदासी मलिन मुख पर
याद आई बात क्या भूली
कि बच्चा है पड़ा बीमार
पत्नी बन रही कंकाल
चूल्हा भी जलाना है उसे ही
डाक्टर की दवा, जाड़े के गरम कपड़े
महाजन और आगा
पाँव आगे बढ़ रहे
जैसे कि बढ़ते ही नहीं हैं
है तुम्हारा दूसरा भी रूप
जिसको जानकर भी तुम बने अनजान
तुम अनश्वर, शक्ति की तुम धार अविरल
तुम पुरुष हो।

अपने जन्म-दिवस पर शभूनाथ सिंह ने अपने कवि-मित्रों के नाम एक पत्र लिखा है। रचना व्यक्तिगत हो उठी है, पर पाठकों का ध्यान वह इसलिए आकर्षित करेगी कि उसमें भविष्य के कुछ अच्छे कवियों की चर्चा है। नीचे हम केवल उन कवियों के संबंध में कवि की निजी धारणाएं दे रहे हैं जिनकी चर्चा इस समीक्षा-ग्रंथ में कहीं न कहीं हुई है। इधर जैसा शंभूनाथ सिंह का स्वभाव हो गया है, थोड़ा बहुत उपदेश वे निःसंकोच भाव से दे बैठते है। नामवर सिंह, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन, रमानाथ अवस्थी, धर्मवीर भारती, गिरिधर गोपाल और जगदीश गुप्त के नाम संदेश भेजते हुए वे कहते हैं—

हे 'श्रेष्ठनाम', तुमको मैंने देखा सरपट
दौड़ते रेल सा ही जीवन की पटरी पर
अति तीव्र वेग से।

आलस-वश
पथ पर बैठे रहना, न भटक जाना वन में
वादों के और विवादों के, यह अभिलाषा
मेरी। मानवता से है बढ़कर जीवन में
कोई न वाद; पूरी करना मेरी आशा।
हे वाणी के मधुमय 'विलास', तुम यों निराश
होकर क्यों बैठ गए पथ पर ?
हे मित्र 'त्रिलोचन' तुम हो, है तीसरा नयन
वाणी में, सुधा स्निग्ध नयनों में है वाणी;
तुमसे आशंसा, आलोचना, हँसी, ताना
पाकर पी गया, मिला जो कुछ मीठा-तीखा !
प्रिय 'रमानाथ' यह सत्य कि तुम हो कवि केवल ?
'भारती', भारती नए वेश में हैं उतरी
तुम में, सजकर वीणा लेकर तूणीर, भरे
जिनमें फूलों-शूलों के शर।
कहता तुमसे पा अपनापन
प्राचीन सभी क्या बुरा ? भला क्या सब नूतन ?
'गिरिधर', यह जीवन है भारी गिरि गोबर्धन
इसको निज उँगली पर धारण कर सको अगर
मिट जाय भाग्य-भ्रम शव-साधना, मृत्यु-पूजन !
हे 'विश्व', भारती के भावक, कवि चित्रकार !
कर रहा नमन
मैं उन सबको, जो भी हैं मेरे हमराही
शारदा-सुत्र।
साथियो उठो, पथ पर आगे आओ प्यारे !

शंभूनाथ सिंह ने गीत, लंबी कविताओं एवं मुक्त रचनाओं सभी में अपने प्राण उड़ेले हैं। प्रणय के भाव-स्निग्ध मधुर गीतों के धरातल से

उठकर वे सुधार की पथरीली ऊबड़-खाबड़ भूमि की ओर बढ़ रहे हैं। आज उनकी भावना राजनीति की गोद में खेल रही है। भविष्य में उनकी कविता क्या मोड़ लेगी, कहा नहीं जा सकता। इतना तो सभी जानते हैं कि सुधार और व्यंग्य का सहारा लेते ही काव्यत्व प्रायः विदा लेने लगता है। यह आशंका शंभूनाथ सिंह की इधर की रचनाओं को देखकर होने लगी है।

हंसकुमार तिवारी

हंसकुमार तिवारी की 'रिमझिम' में जो पहली विशेषता दृष्टि को आकर्षित करती है, वह है कवि का प्रकृति-प्रेम। प्राकृतिक-सौंदर्य के दर्शन पर कवि की आत्मा आनंद-मग्न हो जाती है। प्रभात और तारा-दर्शन का उस पर ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। हंसकुमार जी ने कई स्थलों पर यह सिद्ध किया है कि मानव-जीवन अनेक अंशों में प्रकृति-जीवन की अपेक्षा हीन है, कम से कम, वह उतना दिव्य तो किसी प्रकार है ही नहीं। वसंत आदि के रूप में प्रकृति के वैभव का उन्होंने हृदय खोलकर चित्रण किया है। 'निर्झर' और 'बादल' जैसी रचनाओं में यह भी संकेत मिलता है कि मनुष्य चाहे तो अपने जीवन का आदर्श प्रकृति में ही खोज सकता है। कहीं-कहीं वर्ड्स्वर्थ के समान वे यह विश्वास करते भी प्रतीत होते हैं कि व्यक्ति को प्रकृति के आनंदोल्लास में हृदय से सहयोग देना चाहिए। इन पंक्तियों को देखिए—

दीप्त वसुधा-भाल
हँस रहीं दूबें पहनकर ओस-मुक्ता-माल
गा रहे खग-बाल
फूल की सुरभित हँसी से डाल-डाल निहाल
आज मंगलमय सुवेला
छा रहा स्वरमय उजेला
विश्व-तट पर चपल प्राणों का लगा है आज मेला
पर वहाँ पर है अकेला
एक तू प्रियमाण
जाग सोये प्राण

कंठ क्यों रे क्षीण
सुधि-सर में सो रहा क्यों चिर-चपल मन-मीन
ले उठा निज वीण

इस कृति में ईश्वर और देश-प्रेम सबंधी रचनाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी रचनाएं भी हैं जो व्यक्ति के आचरण को सुधारने के लिए प्रेरणा का काम कर सकती हैं। यहाँ भी आदर्श के रूप में किसी न किसी वस्तु को कवि आँखों के सामने लाता है जैसे दीप और फूल। इन रचनाओ में संयम, विवेक, दया, नम्रता, सत्य और मानवता आदि की बराबर प्रशंसा की गई है जिससे सुधार या उपदेश की गंध आ गई है और काव्य-तत्व क्षीण होगया है—

ऐसा धन हो
वैभव-मद अभिमान नहीं हो
नित विलासिता मत्त मलिन यह प्राण नहीं हो
ध्यान नहीं हो
प्रभुता का, प्राचुर्य, अहं का ज्ञान नहीं हो
उसे व्यर्थ जाने यदि जग कल्याण नहीं हो
ऐसा तन हो
दुर्जय हो जो, जो बलमय हो
प्रबल पराक्रम से जिसके पीड़क-दल क्षय हो
निबल अभय हो
ऐसा मन हो
जो उज्ज्वल हो, शांत-सरल हो
पीर पराई देख मोम-सा तुरत तरल हो
धीर प्रबल हो

'अनागत' में प्रणय का भावावेश अत्यंत संयम के साथ व्यक्त हुआ है। रूप के स्थूल चित्रणों, मिलन के अश्लील वर्णनो और विरह के अतिशयोक्तिपूर्ण उच्छ्वासों का यहाँ अभाव है। प्रेम के स्वर्ण को हृदय

की अग्नि में तपा-गलाकर भाव-चित्रों को कुछ ऐसे शोभन अलंकारों में इन्होंने ढाल दिया है कि काव्य-सुंदरी का अंग सहसा दीप्त हो उठा है। संयोग-वियोग के बाहरी उपकरणों पर अपनी चेतना को अधिक केन्द्रित न कर प्रेम के आंतरिक मर्म को ये अनेक स्थलों पर छूते और पहचानते प्रतीत होते हैं।

मुझे दूर कर दो तुम चाहे, मैं तो पास बना रक्खूंगा!
उतनी आग लगा सकते क्या
तुम इस अंतर में अभिमानी,
लेकर जितना बैठ गया हूँ
मैं इन दो आंखों में पानी;
नयन सरोवर में सरसिज सा वह मृदु हास बना रक्खूंगा।
मुझे स्वप्न से भूल गए तुम
तुम मेरे स्वप्नों में आते,
पलकें चूम, जगा अंतर को
जीवन की इच्छा बन जाते;
तोड़ गए विश्वास, मोड़ मुंह पर मैं आस बना रक्खूंगा।

प्रकृति में शरद, वसंत और चाँदनी आदि पर जो कविताएँ हैं उनमें कोमलता और रम्यता के चित्र अधिक हैं जिनमें पाठक का मन तन्मयता का अनुभव करता है। यों दृष्टि ने प्रकृति के सूनेपन को भी देखा है। इनकी प्रकृति चेतना से युक्त है और अपनी क्रिया में कल्याणमयी।

(१)

पूर्णिमा की रात!
चुप रहो, लो साँस हलकी,
कुसुम-कलि की वास हलकी,
स्वर्ग की सुषमा न सहती
तीव्र कोई बात!

(२)

पीले पत्तों के मर्मर में
चैती दोपहरी रोती है!
वह दूर भूमि के कंधों पर
थककर सोया है आसमान,
दोनों की आहत आँखों में
पीड़ा के बादल भासमान;
नभ के आँसू हैं ओस—
धरा के नभ नयनों के मोती हैं

प्रेम और प्रकृति तक ही अपनी भावना को सीमित न रखकर इन्होंने ईश्वर, मनुष्य, मृत्यु, जीवन, सुख, दुःख और परिवर्तन सभी पर चिंतन किया है। आत्मा-परमात्मा के संबंध को इन्होंने अनेक प्रकार से व्यक्त किया है और दुःख को विभु का वरदान मानकर धरती को अपना प्यार प्रदान किया है। मनुष्य को संघर्षशील, शक्तिशाली, निर्माण-प्रिय तत्व के रूप में देखा है और जीवन को विकासशील ठहराया है—

(१)

धार बनकर बह गए तुम, कूल होकर रह गया मैं!
प्राण के तुम खग मुखर, तन-कनक-पिंजरे में पले जो,
मृत्तिका का पात्र मैं, बन जोत तुम जिसमें जले हो,
डाल बनकर भी फले तुम, मूल होकर रह गया मैं!

(२)

जीवन तो वह, जो चलता है!
जो कभी नहीं झुकता नीचे,
जो कभी नहीं मुड़ता पीछे,
जो फलता निर्जन के तरु-सा
आदर जतनों से बिन सींचे;
सौ बातों की जो बात छोड़, आगे ही सदा निकलता है।

कुछ रचनाएँ देश, राष्ट्र-प्रेमियों और गांधी जी पर लिखी गई हैं। 'अज्ञात-बलि' वाली रचना में इनकी करुणा-भावना ने विलक्षण मार्मिकता ग्रहण की है। स्वतन्त्रता के संग्राम में जो बड़े लोग प्रसिद्धि पा गए, उन्हें तो संसार जानता है; पर कुछ ऐसे भी छोटे व्यक्ति थे जिनके बलिदान पर किसी की दृष्टि नहीं पड़ी। सच्चे कवि की भावुकता ऐसे ही दृश्यों को खोज लाती है—

मिट्टी वतन की पूछती, वह कौन है, वह कौन है ?
इतिहास जिस पर मौन है ?
आँसू लहू के रो रही वह कौन किसकी कामिनी ?
घन-श्याम कुन्तल में नहीं सिंदूर रेखा- दामिनी,
कोमल कलाई पर नहीं हैं काँच की दो चूड़ियाँ,
मुख-चाँद पर छायी हुई है दुःख-मानस यामिनी;
इस शाख से छूटी लता का वह कहाँ आधार है ?
जिसके बिना यह फूल-सा जीवन जगत का भार है ?
वह कौन है ?

इस संग्रह की 'मेरा घर' रचना भी थोड़ी उल्लेखनीय है। कवि की बाँस-फूँस की झोंपड़ी है। पड़ौस में ही एक महल खड़ा है। कवि की पत्नी जिसने जीवन भर दुःख झेला है सोचती है कि वह भी ऐसे ही महल में रहती! पर जहाँ तक कवि का संबंध है, उसका हृदय इस अंतर्द्वन्द्व से मुक्त है। वह वैभव पर संतोष और महत्वाकांक्षा पर भावना को विजयी होते दिखाता है—

मैं देखूं इस का पानी क्या ?
पुरखों का, कुल का पानी था ?
मैं यहीं हुआ, मैं पला यहीं,
घुटनों के बल पर चला यहीं
अंतर की कली यहीं विकसी
जीवन-तरु फूला-फला यहीं;

फिर हिय में राग-पराग भरे,
सिंदुर से दीप्त सुहाग भरे
मंगल-शंखों में तुम आयीं
नत नयन कमल-से लाज भरे;
मधु मिलन यामिनी में इस पर
सौ स्वर्ग हुए थे न्यौछावर ?

भाषा में साहित्यकता पूरी विद्यमान है; पर तत्सम शब्दों के प्रयोग के साथ बीच-बीच में व्रजभाषा के शब्दों जैसे हिय, पसारे, जोत तथा विदेशी शब्दों जैसे तुरबत, मुबारक, नूर आदि भी ये स्वीकार करते चलते हैं। कभी-कभी जिनगानियाँ, छूक और तै जैसे शब्दो को भी खपा देते हैं। एक स्थान पर इन्होंने मजरी से मँजरायें शब्द बनाया है। पंक्तियो में मात्राएँ कहीं-कहीं बढ़ गई हैं। गीत इनके सामान्यरूप से मधुर होते हैं; पर ऐसे स्थल भी कम नहीं जहाँ भावों की तुलना में शब्दों और ध्वनियो का माधुर्य ही प्रबल हो उठा है। पता नहीं क्या बात है कि इनकी तुकें पाठक का ध्यान बरबस अपनी ओर आकर्षित करती हैं। ऐसी तुकों का भी प्रयोग ये कर जाते हैं जिन्हें दूसरे कवि या तो छोड़ देते या उनका ध्यान उधर जाता ही नहीं। पहली ही रचना 'स्मरण' में बड़ी के समानान्तर फुलझड़ी और खड़ी के प्रयोग ऐसे ही हैं; यद्यपि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इन दोनो प्रयोगों को अत्यत रम्य चित्रो के बीच बड़ी कुशलता से ये लाए हैं। इसी प्रकार 'असफल' शीर्षक रचना में वाणी की तौल में 'सा' 'नी' (संगीत के स्वर) और यानी तथा मानी (अर्थ) बिठाये गए हैं।

सच्चिदानन्द तिवारी

सच्चिदानन्द तिवारी का 'वेदना' नाम से एक गीत-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इन गीतों में प्रेम की व्यथा अपनी पूरी मार्मिकता के साथ व्यक्त हुई है।

कहानी में जैसे एक ही प्राणी के हृदय में दो प्रतिकूल मनोभावों को चित्रित करना कठिन होता है, नाटक में जैसे एक ही पात्र के चरित्र में अंतर्द्वन्द्व अंकित करना साधारण प्रतिभा का काम नहीं, उसी प्रकार गीत में भी दो विरोधी भावों को एक स्थल पर सजाना सरल नहीं होता। संयोग में भी विरह दिखाने के लिए ब्रजभाषा के एक पुराने कवि ने नायक-नायिका के संयोग-काल में 'नैहर के लोगों' को बुलाने की कल्पना करके मिलन-पलों में व्याकुलता भरने का प्रयत्न किया है। सच्चिदानद जी का 'स्वप्न मिलन' उसके कही अधिक मधुर और सूक्ष्म है। वे मिलन-सुख और वेदना-दुःख को दूसरे ही ढंग से गले मिलाने में समर्थ हुए हैं—

आज मैंने देख पाई उस मधुर चित चोर की छवि।
स्वप्न में देखा उन्हें निज ओर आते,
अलकयुत भीगी पलकयुत गीत गाते,
कस उठे ढीले रहे जो नेह नाते,
मैं उठी, ये विकल दृग थे क्या न पाते,
नाथ आये हृत्कमल फूला निरख वह प्रेम का रवि।
आज मैंने देख पाई उस मधुर चित चोर की छवि।
प्यार से कर जिस घड़ी उर ओर खींचा,
सिहरने अवयव लगे, सुन मधुर वाणी,
'प्राण' मैं 'प्राणेश' कह लिपटी गले से,
जग उठी, चुप ढालते थे नयन पानी,

इस मिलन, इस वेदना को, कह सकेगा क्या चतुर कवि ।
आज मैंने देख पाई उस मधुर चित-चोर की छवि ।।

प्रकृति का चित्रण अधिकतर हृदय के भावों की लपेट में हुआ है। अरुणोदय के समय, विहंगों के कूजन के समय, निशि और निशिपति के मिलने के समय कवि का हृदय न जाने क्यों एक प्रकार की व्यथा का अनुभव करता है। पर आगे चलकर इस भावना में परिवर्तन लक्षित होता है। 'गीत' शीर्षक रचना ऐसी ही है। वहाँ प्रकृति की मधुर लीलाओं से इतना सुख प्राप्त हो रहा है कि उस सुख में व्याघात पड़ना अखरता है—

प्रतिबिंबित हैं सरि में उडुगण
जिनसे स्पर्धा कर सिकता-कण
कर चमक चौगुनी सी प्रतिक्षण भर रहे आज हैं विपुल स्वांग ।
मछलियाँ लहरियों से लह-लह
अपनी भाषा में कुछ कह-कह
फिर उछल-कूद कर किंचित् बह, हैं खेल रहीं यों जाग-जाग ।
धुल रहा चाँदनी से भूतल
कर रहा हृदय को शांत विकल
पल-पल परिवर्तनशील विमल गा रही प्रकृति भी प्रणय राग
तू एकाकी करता क्रन्दन
जग करता सुख का अभिनंदन
इन मधुर पलों की रजत रात्रि में तो मत भर उर का विराग ।

इन गीतों की भाषा सरल है, भाव स्पष्ट हैं।

नवीन रचनाओं में कवि चिंतन-प्रधान हो उठा है। यह चिंतन बौद्धिकता से कहीं बोझिल नहीं हो पाया। भावुकता का अंश उसमें बराबर पाया जाता है। कवि देखता है चिरंतन कुछ नहीं। तारे प्रभात में मिट जाते हैं, कलियाँ संध्या तक झर जाती हैं।

प्रेम में आघात का सामना कवि को करना पड़ा है। जो कभी अपना था, अब किसी और का हो चुका है। लेकिन इससे प्रणय-सम्बंध

टूट नहीं गया, उल्टे दृढ़तर हो गया है। अतीत की मधुर स्मृतियाँ उभर-उभर कर हृदय को आकुल करती रहती है, यह ठीक है; पर वे प्रिय को निकटतर भी ला रही हैं। इन गीतों में ऐसे प्रेम की चर्चा हुई है जो प्रेमास्पद के व्यवहार पर निर्भर नहीं रहता, बल्कि प्रेमी के प्राणों के रस से नित्य सिञ्चित होकर विकसित होता रहता है।

प्रकृति के आनन्द और विषादमग्न दोनों पक्षों को कवि ने लिया है। एक ओर तितली, मयूर और चाँदनी पर रचनाएँ है जिनमें सुख, सौंदर्य और क्रीड़ा का चित्रण है, दूसरी ओर चातक, समुद्र और क्रौंच दृष्टि-पथ में घूमते हैं जो असफलता, आकुलता और वेदना के प्रतीक हैं।

सच्चिदानन्द जी का झुकाव अभी पीड़ा की ओर अधिक है। वह व्यक्तिगत और अनुभूतिपरक है। 'कपाल' वाली रचना से पता चलता है कि तिवारी जी मात्र सौंदर्य के गायक नहीं हैं, जगत की कुरूपता भी उनका ध्यान आकर्षित करती है। पर यह उन्हीं के चित्रण की विशेषता समझिए कि वीभत्स दृश्यों को भी हृदय की गहरी सहानभूति देकर पाठक के हृदय को झकझोर देते हैं। कला धीरे-धीरे प्रौढ़ हो रही है।

(१)

इन निद्रित पलकों पर पग धर
रजनी में आते हो सुन्दर;
सहसा सुमन सुगंधित होते
गा उठती कोकिल पंचम स्वर;
मधुर मिलन, फिर आँखें खुलतीं,
रो उठता है आकुल अंतर!

(२)

अब है संध्या आने वाली।
तुम सकुच रहीं, कुछ सोच रहीं, नत मुख धरणी को देख रहीं,
पश्चिम के निष्प्रभ घन पट पर इन गालों की ही है लाली।

(३)

इसे पावों से मानव छू न, किसी के सुगंधित शीश का भाग है ये।
इस विश्व कुहेलिका का भ्रमजाल जलाने को ज्ञान की आग है ये।
इसमें अब भी अवशेष किसी रचना की कथा अनुराग है ये।
मनुजों की कृतघ्नता बंधुओं की कटुता का प्रतीक विराग है ये।

गोपीकृष्ण 'गोपेश'

गोपीकृष्ण 'गोपेश' की पहली कृति है 'धूप की लहरें' जिसमें अधिकता उन रचनाओं की है जिनमें जीवन के दुःख पर प्रकाश डाला गया है। संसार में दुःख का अस्तित्व मानते हुए और उसकी महत्ता स्वीकार करते हुए भी कवि उससे दबकर जीवन को व्यर्थ बनाने की बात कहीं नहीं सोचता, वरन् उससे मुक्त होकर जीवन की मुसिकान की ओर बढ़ने का प्रयत्न करता है। इस व्यक्तिगत पीड़ा से भिन्न उस पीड़ा पर भी उसकी दृष्टि गई है जो दूध बेचने वाली विधवा, महानगरों के फुटपाथ पर सोने वाले मानव या भिखारी को देखकर उत्पन्न होती है। इस प्रकार प्रारंभ में इनकी भावुकता व्यक्तिगत वेदना और व्यापक दीनता को काव्य का मुख्य विषय बनाकर चली है। प्राकृतिक वस्तुएँ भी जैसे पत्ते, तारे बादल, भ्रमर और कलि आदि अभी तुलना, उपमान और प्रतीक-विधान के रूप में अधिक प्रयुक्त हैं। इन छोटी-छोटी रचनाओं की शब्द योजना सरल और शैली प्रवाहमयी है—

(१)

मैं तो राह देखकर हारा !
कलियों ने अपने अलियों से
अपने मन की कही-सुनी है,
उनकी बात बहुत छोटी थी,
मेरी गाथा कई गुनी है,
आश बँधी है-व्यर्थ होगा
मेरा रोदन क्रंदन सारा !
पर, मैं राह देखकर हारा !

(२)

आगे है मैदान कि मीलों
जहाँ न तरु की छाया,
आगे है मैदानी कि जिसमें
मरकर जीती काया !
कोमल तन हो, सह न सकोगे
आँधी को, अँधड़ को।
राही पल भर पथ पर बैठो !

दूसरे ग्रन्थ में जिसका नाम इन्होंने 'साँसें और सपने' दिया है कल्पना अधिक परिपक्क हो गई है। पहले केवल मानव-अनुभूति की लपेट में ही प्रकृति कहीं-कहीं आती थी, अब मानवीय अनुभूतियाँ प्रायः प्रकृति के माध्यम से व्यक्त होने लगी हैं। पपीहा, कोकिल, पतझर, वसंत, संध्या, चाँद और सितारों पर जो रचनाएं हैं वे प्रकृति से अधिक जीवन की समस्याओं और रोमांटिक भावनाओ के चित्रण करती हैं। पिछली कृति में एक बात बहुत स्पष्ट नहीं थी। वह यहाँ खुल गई है। वह दुःख विरह का दुःख था। किसी से दूर रहने की ये अनुभूतियाँ, जो नित्य जीवन की सामान्य परिस्थितियो में प्रकट होती रहती हैं, बड़ी कसकपूर्ण हैं। 'गोपेश' जी हृदयस्थ वेदना को व्यक्त करने के लिए असाधारण घटनाओं की कल्पना करते कहीं नहीं दिखाई देते। जीवन की महत्ता का उद्घोष तो इन रचनाओं में भी हुआ है। आकाश की तुलना में धरती और देवताओं के समक्ष मानव को इन्होंने सदैव बड़ा माना है।

(१)

दूर पपीहा बोल रहा है—
दर्द बनाया
अन्तरतम में जिसे छिपाया
उसी राज़ को आज पपीहा खोल रहा है।
पागल है क्या ?

(२)

तुम्हें पूछता हुआ गगन में उग आया है चाँद !
ऐसे में तुम घर-बाहर की चिंताओं से कातर,
साँझ हो गई है, आले पर रख दो दिया जलाकर,
आँसू पोंछो अंचल भीगेगा, जाड़े के दिन हैं,
दिन भर के हारे माँदे की चिंता करना सीखो,
जलते मस्तक पर हथेलियाँ हँसकर धरना सीखो,
मेरा क्या ? मैं मोह व्यर्थ का, ज्यों माया है चाँद
किसी की ज्यों छाया है चाँद
गगन में उग आया है चाँद
तुम्हें खोजता हुआ ?

'गोपेश' जी की भावना रोमाँटिक और स्वानुभूतिनिरूपक रचनाओं ही में अच्छी खिलती है। उससे हटकर जब ये राजनीतिक नेताओं, राष्ट्रीय भावनाओं या यथार्थवाद के आवेश में साधारण विषयों पर लिखने लगते हैं तो वह आग जैसे बुझकर राख बनने लगती है। यथार्थवाद की ओर इधर इनका झुकाव कुछ अधिक हो रहा है जिसमें काव्य से अधिक ये बातचीत के धरातल पर उतर आए हैं और भावना के कोमल तंतुओं में ऐसी ठोस और अनगढ़ वस्तुएं लटकाने लगे हैं कि पाठक की चेतना को बीच-बीच में झटका-सा लगता है।

श्रीपाल सिंह 'क्षेम'

'जी न-तरी' श्रीपाल सिंह 'क्षेम' के गीत-संग्रह का नाम है।

प्रेम में आनन्द के रोमाञ्च और व्यथा की सिहरन दोनों को कवि ने बड़ी सफलता से अंकित किया है। इनके वर्णन में भाव, रूप, प्रकृति और चित्रमयता चारों गुँथे रहते हैं अर्थात संयोग का वर्णन हो या वियोग का उसमें किसी भावना की अभिव्यक्ति के साथ प्रेमिका के सौंदर्य की चर्चा होगी, उस भावना की पुष्टि प्रकृति के क्रिया-कलाप या प्राकृतिक नियमों से होगी और साथ ही बीच-बीच में बात भी पूरे चित्रों में कही जायगी। प्रकृति के तत्वों में आकर्षण देखकर ही इन्होंने जीवन के लिए प्रेम को अनिवार्य माना है। वैसे भी प्रणय के जीवन को ये प्रकृति के साथ सम्बद्ध करके देखते हैं। कुछ वर्णन देखिए—

प्रिये, यह दो हृदय की बात तुम जानो कि मैं जानूं!
नयन में नयन की छाया,
अधर पर हास अलसाया,
परों पर भावना के झूमती
यह स्वप्न सी काया;
प्रिये, यह यामिनी रस स्नात, तुम जानो कि मैं जानूं!
लहरते कंध पर कुंतल,
हृदय पर कांपता अंचल
बिछुड़ती जा रही ज्यों रात
झरती ओस के दृगजल;
प्रिये, यह चिर विरह का प्रात, तुम जानो कि मैं जानूं!

इनके काव्य का भाव-पक्ष जैसा कोमल है, विचार-पक्ष वैसा ही सशक्त। नए कवियों में ये अकेले गीतिकार हैं जो दुःख को विवेक की दृष्टि

से देखकर जीवन को मङ्गलमय बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं। प्रायः ऐसा होता है कि व्यक्ति जीवन में पाए गए बड़े से बड़े सुख को विस्मरण कर छोटे से छोटे दुःख के लिए हा-हाकार मचाता है। सुनने वाले पर प्रभाव पड़ता है यह कि वह जीवन को दुखःमय समझने लगता है। क्षेम जी इससे उल्टा सोचते हैं। वे दुःख को जीवन का अनिवार्य पर नगण्य अंश मानकर उसके सुख-पक्ष पर अधिक बल देते हैं और उस पर ही चिंतन करने की ओर इङ्गित करते हैं। एक प्रकार से क्षेम जी संयत आनंदवादी हैं। आज के युग में जीवन और सुख के प्रति आस्था बनाए रखना कितना कठिन हो गया है यह हम आधुनिक-काव्य के वेदनावादी कवियों की रचनाओं को पढ़कर सहज ही अनुमान लगा सकते हैं।

(१)

इसी से प्रिये, कह रहा आज तुमसे कि तुम भी हँसो और मैं गीत गाऊँ।
इसी पंथ पर शोक के शूल भी हैं,
इसी पंथ पर हर्ष के फूल भी हैं,
इसी पंथ पर है विरह धार बहती,
इसी पंथ पर ही मिलन कूल भी हैं।
हुआ क्या अगर घोर तम पंथ घेरे,
रुकी है निशा, मूक सी हैं दिशाएँ,
विरह-योग में एकरस झिलमिलाए प्रिये वह प्रणय-चाँदनी मैं बिछाऊँ।

(२)

ओ प्राण अभागे रोता क्यों ?
झरना यदि फूलों का सच है, खिलना क्यों उनका सत्य नहीं !
बिछुड़न यदि जीवन का सच है, मिलना क्यों जीवन-सत्य नहीं !
यह मन अविराम बंधा करता चिर सुख-दुख के युग कूलों से;
मिलने का सुख आभार भुला, आँसू का हार पिरोता क्यों ?
ओ प्राण अभागे रोता क्यों ?

'क्षेम' जी की गणना बहुत अच्छे गीतकारों में होनी चाहिए। ये

स्थूल से स्थूल वस्तु को भी अत्यंत सूक्ष्मता से ग्रहण करने वाले कवि हैं, यहाँ तक कि इनके द्वारा उठाई गई भावना कहीं-कही इतनी सूक्ष्म हो जाती है जिससे चित्र स्पष्ट आँखों के सामने न आकर केवल झिलमिलाता है। अलंकरण और अभिव्यजना के साधन स्पष्टतः छायावादी हैं। सगीत का इन्हें अच्छा ज्ञान प्रतीत होता है यहाँ तक कि कहीं-कहीं सगीत का माधुर्य गीत को ढक भी देता है। भाषा मसृण, कोमल और मधुर है। उसमें भावों को आंदोलित करने की शक्ति विद्यमान है। इनके छोटे से गीत में किसी न किसी भाव, विचार या क्रिया का पूरा विकास मिल जाता है। इस दृष्टि से इनके गीतो की गठन बड़ी व्यवस्थित रहती है।

चंद्रमुखी ओझा 'सुधा'

चद्रमुखी ओझा 'सुधा' का काव्य प्रेम के ताने बाने से बुना गया है। प्रेम की पूजा ही उनके जीवन का लक्ष्य प्रतीत होता है। काव्य-क्षेत्र के निर्दिष्ट होने से उसमें गहराई आगई है।

जिस प्रेम का चित्रण सुधा जी ने किया है, उसे सफल नहीं कहा जा सकता। प्रेमिका का हृदय जितना आर्द्र, कोमल और व्यथा से पूर्ण है, प्रेमी का उतना नहीं। उसमें कठोरता, उपेक्षा और उदासीनता भरी हुई है। कवयित्री ने स्थान स्थान पर अपने प्रेमी को पाषाण बतलाया है। एक पाषाण ऐसा होता है जिसे व्यक्ति ठोकर लगने के डर से बचाकर चलता है, दूसरा ऐसा जिसकी पूजा करता है। सुधा जी ने जिस पाषाण से ठोकर खाई है, उसी की पूजा करने लगी हैं। उनके मन में कभी-कभी विद्रोह की भावना भी जगती है पर वह अधिक देर ठहर नहीं पाती। होता यह है कि जिसे भूल से भी एक बार प्यार किया जाता है, बाद में फिर उससे चाहे कैसा ही व्यवहार मिले, उसे छोड़ा नही जा सकता। प्रेम के जीवन की यही सबसे बड़ी विवशता है—

उँगली पर दिन गिने जा सकें
केवल इतना प्यार मिला है
सब सुख खो देने पर मुझको
आँसू का अधिकार मिला है

भूल न अपनी जान सकी क्यों प्रिय मेरा पाषाण बन गया।
यह किसका अभिशाप हमारे जीवन का निर्वाण बन गया।

'वंदना' में मिलन के पल विरल हैं, विरह और प्रतीक्षा के विशेष। इस विरह में जैसा रस पाया जाना चाहिए था, वैसा नहीं पाया जाता। इस रस को किरकिरा करने वाली है दूसरी ओर की उपेक्षा।

सुधा जी ने अनेक स्थानों पर उस ओर के प्यार को 'विष' कहा है और यह विश्वास प्रकट किया है कि अपने अनुराग के अमृत से वे उसे भी अमृत करके छोड़ेंगी। कुछ भी हो, अपनी काव्य भूमि के प्रसार के लिए सुधा जी को अब व्यापक जीवन के सौंदर्य और उसकी विविधता की ओर बढ़ना चाहिए।

प्रकृति को मानव-जीवन का मूक दर्शक सुधा जी समझती हैं, इसी से विरह-काल में उससे दो बातें कर उन्हें बड़ी सान्त्वना मिलती है। कहीं-कहीं प्रकृति को अपने जैसा पा उनकी सहानुभूति उमड़ पड़ी है। रीते बादलों को जब पवन उड़ाकर ले जाना चाहता है तो वे कहती हैं—

मत इन्हें उड़ाकर ले जा तू
मैं नयनों का जल भर दूँगी,
अपनी आँखों के काजल से
इनको कजरारे कर लूँगी।

नई कविता में गीति के तत्व कुछ कम पाए जाते हैं। सुधा जी इसका अपवाद हैं। उनके छंदों का चुनाव उनके गीति-काव्य का विशेष बल है। ये गीतियाँ संगीत के तत्वों से ओतप्रोत हैं। भाषा सरल और कोमल है। खड़ी बोली के खुरदरेपन को मिटाने के लिए वे ब्रजभाषा के कुछ अत्यंत प्रचलित शब्दों को ग्रहण करती हैं और कुछ के रूप बिगाड़ भी देती हैं। नैन, बैन, पूनो, पिया, बिरवा, बजार, अमिय, मीत, साँझ, सबेरा, मोरे, सिरजना ऐसे ही शब्द हैं।

देवनाथ पांडेय 'रसाल'

देवनाथ पांडेय 'रसाल' की दो कविता-पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं—दीपिका और बांधवी।

दीपिका में विभिन्न विषयों पर रचनाएँ संगृहीत हैं—प्रमुखता प्रेम और प्रकृति संबंधी गीतो की है। प्रणय-गीतो में नारी पुरुष का पारस्परिक आत्म-निवेदन है। जिस प्रकार कवि ने अपने हृदय के सुख दुःख, हर्ष-शोक का अभिव्यक्ति दी है, उसी प्रकार अपनी अनुरागिनी को वाणी भी। प्रायः यह देखा जाता है कि कवि यदि पुरुष है तो प्रेमिका को संबोधन करके प्रणय-गाथा सुनाता है और यदि वह नारी है तो पुरुष से अपनी विह्वलता व्यक्त करती है। पर पांडेय जी ने अपनी छटपटाहट के साथ उस ओर की पीड़ा को भी प्रकट किया है।

गीत लौकिक प्रेम के हैं। कहीं-कहीं आध्यात्मिक ध्वनि व्यंग्य है। इन गीतों में कवि ने पूरे संयम से काम लिया है, यह उसकी विशेषता है। आज के कुछ नवयुवक यथार्थवाद की आड़ में लोक मर्यादा और शिष्टता का कुछ भी ध्यान न रखते हुए अपने कुत्सित मन की नग्न वासना को जिस उच्छृङ्खलता से उड़ेलते देखे जाते हैं देवनाथ जी उनके अपवाद हैं।

आँसुओं पर उनकी कल्पनाएं अत्यंत उपयुक्त, रमणीक और मार्मिक हैं। कवि से कोई मिलने आ रहा है। वह विह्वल नहीं होता। कहता है—

आज होगा शुभ मिलन री।
शुभ घड़ी के लिये ही यह आँख बनती सजल गगरी।

प्रकृति संबंधिनी रचनाएँ प्रेम संबंधिनी रचनाओं से भी परिमाण में अधिक हैं और सच पूछा जाय तो जिस सहज भाव से कवि ने प्रकृति के अंतर में प्रवेश किया है वैसा अन्यत्र कम। प्रारंभ में वह एक सामान्य

जिज्ञासा-भावना को लेकर चलता है जो अपने स्थान पर अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होती है -

कनक निर्मित तूलिका से रँगा किसने प्रात ?
सरित के तट पर बिछाकर स्वर्ण के कण,
मोतियों से कली की भर मधुर चितवन,
श्वास से किसने किया सुरभित सजनि यह वात ?

इस स्वाभाविकता का ध्यान पांडेय जी ने बराबर रखा है। प्रकृति की वस्तुएँ सामान्य रूप से जिन भावनाओं की व्यंजना करती है उन्हें ही कवि ने अधिकतर दिखाया है।

कुछ रचनाएँ देश के विशिष्ट व्यक्तियों और स्थानो को लेकर है। कवियों में यह कवि मीरा से बहुत प्रभावित हुआ है, महापुरुषों में महात्मा गांधी से। दोनो का कीर्ति-स्तवन उसने अत्यंत अनुराग से किया है। राजनीति के क्षेत्र में देवनाथ जी की कुछ रचनाए उग्र प्रवृत्ति को लिए हुए भी है। उन्होंने थोड़े क्रांति-गीत भी लिखे हैं। उनमें आवेश के स्वर में स्वतंत्रता और बलिदान की पुकार है। ऐसी रचनाओं में ओज बराबर विद्यमान है।

लेकिन 'दीपिका' का अभिव्यक्ति-पक्ष अभी सभी कहीं सबल और चुस्त है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इन रचनाओं की एक आकर्षक विशेषता यह है कि ये कहीं भी दुरूह नहीं हैं।

'बांधवी' वस्तुपरक काव्य-ग्रंथ है। इसमें कवि ने अपने से भिन्न बाहर की वस्तुओं पर दृष्टि डाली है।

इसकी पहली विशेषता है ग्राम-जीवन का वर्णन। कवि ने गाँव को दीन और वैभवहीन चित्रित किया है और उसके दुःख का मूल कारण माना है पूँजीपतियो को। पर कवि यदि यहीं रुक जाता तो गाँव का यह चित्रण अत्यंत निराशापूर्ण होता। उसकी दृष्टि को क्षितिज में नव प्रकाश के चिह्न भी दिखाई दिए हैं और उसका विश्वास है कि निकट भविष्य मे भारतीय गाँवों का रूप ही बदल जायगा। किसान को उसने कर्म और प्रेम का

देवता माना है। ग्राम-युवती के इसमें कई चित्र जहाँ वह खेत में लगन से काम करती हुई अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती है, बहुत रम्य बन पड़े हैं। उसने गाँव के नित्य के सामान्य जीवन को भी चित्रित किया है। कवि का गाँव से निकट का संबंध है; अतः उसके वर्णन स्वाभाविक, मार्मिक, रम्य और कलात्मक हैं।

गाँव से वे देश पर आते हैं, क्योंकि हमारा देश अभी एक विराट गाँव ही तो है। 'बांधवी' की अनेक पंक्तियों में देश-प्रेम फूट पड़ा है।

यह देश-प्रेम उन्हें धरती के गीत गाने की ओर ले जाता है। अपनी धरती से सुन्दर 'रसाल' जी को कुछ नहीं लगता।

धरती के गीत गाते-गाते मनुष्य की गरिमा का उन्हें ध्यान आता है। मनुष्य को उन्होंने वह असीम शक्तिशाली अटूट तत्व माना है जो पथ में आँधी, चट्टानों और काँटों से उलझता हुआ विकास के पथ पर बढ़ रहा है।

यहीं से प्रकृति की ओर उनकी दृष्टि उठती है। विभिन्न ऋतुओं का वर्णन करते हुए वे उसे विशेष रूप से मनुष्य के कर्म और प्रेम की पीठिका के रूप में देखते हैं।

और तब चिंतन और भी ऊंची उड़ानें लेने लगता है। वह जगत और सृष्टा के संबंध में कवि की दृष्टि को भावमयी बनाकर आत्मा के गीतों की सृष्टि करता है।

इस प्रकार 'बांधवी' में 'रसाल' जी का दृष्टिकोण अधिक व्यापक, चिंतन अधिक सूक्ष्म और अनुभूति अधिक गहरी हो गई है। अभिव्यक्ति पक्ष पहले से अधिक प्रौढ़ है, पर कहीं कहीं उलझा हुआ और फीका है। रचनाओं में जहाँ उन्होंने संगीत के तत्वों से युक्त गीत और भावपूर्ण कविताएं दी हैं, वहाँ कहीं-कहीं ऐसा भी लगता है जैसे के काव्य-भूमि से नीचे आकर बात कर रहे हों। 'ज्वान' और 'काँट' जैसे शब्दों का प्रयोग उन्हें आगे की रचनाओं में बचाना चाहिए। 'रसाल' जी की रचनाओं से कुछ उदाहरण लीजिए।

(१)

गाँव की बाला ने छवि जाल बिछाया है सरिता के कूल।
केश में लहराते हैं मेघ दसन में दामिनि की मुसकान।
घटा के बीच उल्लसित हँसता है मुख-चंद्र कभी द्युतिमान।
नयन के नील गगन में आँसू के तारे उगते अवदात।
स्नेह की मनुहारों में पली साँस में बंदी है पवमान।
देखती खड़ी किनारे मौन लहर के बीच किरण के फूल।

(२)

स्वर्ण फसल पर
चली फिसल कर
पग धर चंचल, हँस हँस, खिल खिल
मस्त चाँदनी फागुन की
अलमस्त चाँदनी फागुन की।

(३)

स्वराज्य-डोर में अनेक गुत्थियाँ लिए हुए;
स्वतंत्रता मिली मगर विपत्तियाँ लिए हुए।

(३)

सत्य की खोज में सृष्टि थक सो गई,
स्वप्न केवल मिला है मिला देवता।
एक ही विंदु से है बना सिंधु यह,
एक ही रश्मि से है बना इंदु यह,
दृष्टि की जो परिधि के परे शून्य वह,
शून्य के क्या परे द्वार है बंद यह?
सृष्टि को सत्य जग ने लिया मान-
भ्रम यह पला आ रहा है पला देवता।

गुलाब खंडेलवाल

गुलाब खंडेलवाल की चार कविता पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं (१) कविता (२) चाँदनी (३) गांधी भारती और (४) बलि निर्वास।

'कविता' की रचनाएँ समय समय पर उठी मानस की विभिन्न वृत्तियों की स्वर लहरियाँ हैं। कुछ रचनाओं का विषय प्रकृति है जिनमें चाँदनी कवि को विशेष प्रिय है।

छोटे-छोटे गीतों में भावुक-हृदय प्रेम की खोज में भटका है—ऐसे वैसे नहीं अविनश्वर प्रेम की। प्रेम में विफलता मिलने पर कवि अठारह वर्ष की बहुत छोटी अवस्था में ही दार्शनिकों की सी बातें करने लगा है। संसार को वह असार समझता है, दुःख और मृत्यु को अटल, जीवन को क्षुद्र क्षण भंगुर और अभावों से पूर्ण। इस धारणा ने उसके मस्तिष्क की विचार-धारा को दो दिशाओं में मोड़ा है—एक तो वह ज्ञान से उकताकर आनंद का उपासक बन गया है और दूसरे वह इस संसार से परे चिर सत्ता की गोद में सान्त्वना पाने की आशा करता है। यों कवि की निराशा में भी एक प्रकार की मस्ती पाई जाती है। वैसे वह अधिकतर नियति से शासित एक निराशावादी व्यक्ति है जिसने जीवन के आलोक से जीवन के तम को अधिक देखा है—

(१) जीवन में शत-शत विकार हैं,
विरह भार हैं विधि प्रहार हैं।

(२) ले यौवन का अभिशाप जला करता हूँ
अपनी ज्वाला में आप जला करता हूँ
युग हुए किया था प्यार कभी जीवन में
अब तिल तिलकर चुपचाप जला करता हूँ।

इस कृति में भाषा की सरलता मन को मुग्ध करती है। यों परिष्कृत

और मधुर हिन्दी के साथ फ़ारसी-अरबी के दुश्वार, आतिश, इज़हार, अरमान, दरकार, शबनम, तूफ़ान जैसे शब्दों का प्रयोग भी गुलाब ने बिना हिचक के किया है।

अपनी दूसरी कृति 'चाँदनी' में एक ही विषय को भावना का आधार बनाकर इन्होंने पचास के आस पास गीत लिखे हैं। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं—एक, इनका प्रकृति-प्रेम और दूसरी, एक ही रम्य वस्तु के प्रति इनके हृदय का अत्यधिक अनुराग। चाँदनी पर यों थोड़ा बहुत सभी लिखते हैं, पर ऐसे जम कर नहीं।

कवि ने चाँदनी को नारी मानकर उसके रूप का चित्रण किया है। आभामय जगत् का ऐसा मुग्धकारी वर्णन दूसरे स्थान पर कठिनाई से मिलेगा। जहाँ कवि चाँदनी को नग्न लावण्यमयी तरुणी के रूप में देखता है, वहाँ स्पष्टतया तरुण हृदय की मासल एवं उत्तेजनावर्द्धक कल्पनाओं को पूरी छूट मिल गई है; पर अधिकतर कल्पनाएं संयमित हैं। ये कल्पनाएं नवीन भी हैं, मधुर भी, यद्यपि कहीं-कहीं विचित्र भी। एक ही वस्तु पर और वह भी विशिष्ट चित्र खड़े करने के लिए जब कल्पना जगेगी तो अनेक रूप लेगी ही। इसी से यहाँ चाँदनी कहीं पनहारिन बनी हुई है, कहीं ग्वालिन, कहीं परी, कहीं गायिका और कहीं कवयित्री, चाँदनी के शरीर के साथ उसके हृदय की सुधि भी कवि ने ली है। उसे सप्राण मानने से उसके अंतर के प्रणय-व्यापार और मानस-क्रीड़ाओं का चित्रण भी यहाँ-वहाँ बिखरा पड़ा है। कुछ चित्र देखिए—

(१)

चाँदनी खिली दूध की धोई—
अंग रँगे तारों की झलकें
नत चितवन, निद्रालस पलकें
पगतल-चुंबित श्यामल अलकें
आधी रात, विचरती जूही-वन में बाला कोई।

(२)

चाँदनी फूल चुन रही बन में —
नव मृणाल से भुज लचकीले
नभ-वेणी-बंधन से नीले
झरते तारक कुसुम रँगीले
देख रही मुख आभा अपनी ओसों के दर्पण में।

(३)

चाँदनी कविता लिखती उन्मन—
कापी सदृश खुली गिरि-घाटी
कर में रजत-निर्झरी साँटी
लिख-लिख मिटा रही है पाटी
दोलित-वक्ष मधुर भावों में रही स्वयं कविता बन।

(४)

चाँदनी शृंगार करके चली—
मलय अंचल तरु-वलय में फँस रहा
पीठ पर उड़ नाग काला डँस रहा
फूल नन्हा दब चरण से हँस रहा
बाम-कर-विधु-दीप में घनसार भर के चली।

(५)

दिगंबरि अंबर से उतरी—
अलक-विचुंबित चल पग-तलियाँ
झिलमिल तारक-रोमावलियाँ
चपल नयन, घनश्याम पुतलियाँ
यौवन-रंग-भरी।
निरख नग्न छवि बेसुध जगती
त्रिभुवन मृदु चितवन से ठगती

रति से भी वह सुंदर लगती
नभ की रत्नपरी।

'कच-देवयानी' एक छोटा-सा सफल खंड-काव्य है। जैसा कवि ने भूमिका में बतलाया है रवीन्द्रनाथ की कच-देवयानी (बिदायेर अभिशाप) से इसका कोई संबंध नहीं है। कविता के अंत में रवीन्द्रनाथ की देवयानी खीजकर कच को शाप दे बैठती है। गुलाब ने अपनी देवयानी से शाप नहीं दिलवाया—कच की विदा पर उसे रोते और विकल होते छोड़ दिया है। रवीन्द्रनाथ कहना चाहते हैं यह कि अंत में असुर असुर ही रहता है और देवता देवता ही; क्योंकि वहाँ देवयानी के शाप पर कच उसे लौटकर आशीर्वाद ही देता है। फिर भी शुद्ध काव्य की दृष्टि से गुलाब की रचना का अंत अधिक मार्मिक है।

इस कथानक के मूल में नैतिकता की भावना घर किए हुए है। देवयानी के प्यार में कहीं से कोई कमी नहीं प्रतीत होती; पर कच का कहना है कि देवयानी उसके गुरु की पुत्री है; अतः उसकी बहन है। वह सोच भी नहीं सकता कि उसे प्रेमिका के रूप में देखा जा सकता है। देवयानी इसे 'झूठा सत्य' घोषित करती है। सब कुछ कहने पर भी वह कच को नहीं हिला पाती। जहाँ तक कर्तव्य को प्रेम से बड़ा मानने का प्रश्न है, रवीन्द्रनाथ और गुलाब दोनों के कच एकमत हैं। भावना का खेल और वर्णन का माधुर्य यद्यपि दोनों का भिन्न स्तर का है और यही रवीन्द्रनाथ और गुलाब का अंतर है; पर मानसिक संघर्ष दोनों की देवयानियों में से किसी में कम नहीं।

अपने खंड-काव्य के लिए छंद कवि ने कामायनी के एक छंद से प्रभावित होकर चुना है। इसके अतिरिक्त प्रसाद-शैली का भी प्रभाव थोड़ा-बहुत इस रचना पर अनायास भाव से पड़ गया है। उदाहरण के लिए इसमें भी कच देवयानी से उसका परिचय कुछ-कुछ वैसे ही पूछता है, जैसे कामायनी में मनु श्रद्धा से। इस ग्रंथ की कुछ सुंदर पंक्तियाँ और सुंदर स्थल देखिए—

तुम कौन आह गिरि सरिता-सी
लघु लघु उपलों से टकराती
आरही विजन में खोयी-सी
ज्यों दीपक की उड़ती बाती
× × ×
ओसों से प्यास बुझा तुम तो
जा रहे प्रात के तारे से
इस धारा सदृश पुकार तुम्हें
रोती मैं लिपट किनारे से
× × ×
इतना न अधीर करो मन को
अपने गौरव का ध्यान करो
यह प्रेम वंचना है, इसमें
जीवन को मत बलिदान करो
यदि प्रेम सत्य भी होता तो
कर्त्तव्य प्रेम से ऊपर है
स्वर्गों की आशा का दीपक
कैसे जल सकता भू पर है

'गांधी भारती' में महात्मा गांधी के निधन पर कवि ने चवालीस सोनेट लिखे हैं। इस छोटी-सी कृति में महात्मा जी को मानवता के पोषक और मानव-आत्मा के संदेश-वाहक के रूप में देखा गया है। सोनेट हृदय की अनुभूति से प्रेरित और प्रसारित लगते हैं।

'बलि निर्वास' एक काव्य-रूपक है

आलूरी बैरागी चौधरी

तेलगु-कवि आलूरी बैरागी चौधरी हिंदी में भी समान सफलता से काव्य-रचना करते हैं। उनकी रचनाओं को पढ़कर यह कहीं से नहीं झलकता कि हिंदी उनकी मातृभाषा नहीं है। उनकी कविताओं का प्रथम संग्रह 'पलायन' नाम से प्रकाशित हुआ है।

बैरागी जी मुख्यतः मानवता के प्रेमी के रूप में हमारे सामने आते हैं। संसार को एक मानकर इन्होंने उस पर विचार किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि व्यक्ति को समाज से सम्बद्ध करके इन्होंने उसके कल्याण के लिए उसे प्रेरित और जाग्रत किया है। वे अच्छी तरह जानते हैं कि मानव अकिंचन है और वे यह भी देखते और अनुभव करते हैं कि प्राणी युग-युग से ऐसे ही अत्याचार सहता हुआ आरहा है। इस दृष्टि से इनके द्वारा अंकित मानवता का पिछला चित्र काला, निराशा से पूर्ण और भयभीत करने वाला है। परन्तु वे इस खुले सत्य से भी अवगत हैं कि केवल एक व्यक्ति का दुःख भी विश्व-व्यापी घटनाओं से सीधा संबंध रखने वाला है। अतः उस मानवता को जो मूक पशुओं सी न जाने कहाँ जारही है, कवि नवीन संदेश देने की बात सोचता है। वह व्यक्ति में विद्रोह की भावना भर कर उसकी आत्मा को नवीन बल प्रदान करता है। आशावादी होने के कारण वह समझता है कि विश्व में व्यक्ति की महत्ता फिर से स्थापित होगी, धरती हँसेगी और जीवन आनद से परिपूर्ण होगा—

(१)

रक्त-स्वेद-कर्दम के ऊपर मानवता का नलिन खिला है,
युग-युग के जीवन-विकास में अभ्युन्नति का पंथ मिला है।
मानव रत विनाश-लीला में, पर मानवता सृजनशील है,
कितनी भूलों के काँटों पर खिला सफलता मधुर फूल है।
नित अविरत अंतर्घर्षण से विकल सृष्टि बढ़ती ही जाती,

अपनी इस अविराम प्रगति में फँसकर स्वयं बदलती जाती।
परम व्योम के खुले अंक में कितनी प्रेम-कथाएँ बीतीं,
मुक्त वायु के मधुर स्पर्श में कितनी गुप्त व्यथाएं बीतीं।
महानाश के ध्वंस नृत्य से परे सृष्टि बढ़ती ही जाती,
पतित सभ्यता के खंडहर में नूतन संसृति शीश उठाती।
रुक जा, ओ अनंत के प्रेमी! जीवन तुझे पुकार रहा है,
तुझे लुभाने के हित ही तो धरणी का श्रृंगार रहा है।

(२)

जगत सकल कराहता भयंकरास्त्र भार से,
पिशाच खेल खेलते मनुष्य मुंड हार से,
समाज के चरण तले अनाथ व्यक्ति दलित है,
अबोध बाल खेलते अजान में अँगार से!
उजाड़ विश्व पंथ पर, लहू लुहान चरण धर
भटक रही मनुष्यता श्रमित, नमित, सभार है।
परन्तु दूर पार से पुकार एक आ रही,
उजाड़, विश्व-विपिन से बयार एक आ रही,
बयार में छिपे हुए भविष्य के सुस्वप्न हैं,
विलुप्त बीज में छिपी बहार एक आ रही।
अशांति-सिंधु मथन से सुधा-प्रकाश-आस है,
इसीलिए विनाश में विकास की पुकार है।
मनुष्य यह अजेय है, मनुष्य यह महान है!

इनकी चिंतन-प्रधान रचनाओं में जैसे विद्रोही आत्मा का बल पाया जाता है, वैसे ही प्रणय सम्बंधी गीतों में इनके भावुक हृदय की कोमलता, मधुरता और व्यथा के भी दर्शन होते हैं। इनकी प्रणय-भावना को एक प्रकार की अचंचलता और गंभीरता घेरे हुए है। विश्व की कठोरता और निर्ममता को तो इन्होंने ललकारा है; पर प्रेमास्पद के सामने सीधा आत्म-समर्पण कर दिया है। उसके व्यक्तित्व के संघर्ष में अपने व्यक्तित्व

को इन्होंने कहीं नहीं रखा। शायद प्रेम में ऐसा ही होता है। प्रेम को यद्यपि ये सब कुछ नहीं मानते; पर कर्म-पथ पर आगे बढ़ने के लिए बड़ी भारी प्रेरणा के रूप में इन्होंने उसे स्वीकार किया है। ऐसे व्यक्ति को प्रेम-पात्र से जो कुछ मिल जाता है, उसी मे वह संतुष्ट रहता है। इनमें न केवल संतोष पाया जाता है, वरन् कृतज्ञता की भावना भी यहाँ-वहाँ झलक मारती है—

तेरी पूजा किया करूँगा!
जाने या अनजाने, मैं तो इसी आस पर जिया करूँगा!
दुस्सह तड़ित-तेज की ज्वाला
पर बुनकर सपनों का जाला
मैं तेरी अनंत सुषमा को, डरते ही छू लिया करूँगा!
दीपित कर सुन्दर को शिव में
देकर रूप हृदय की छवि में
गूंथ गीत के हार अनामक तुझे भेंट कर दिया करूँगा।

विद्रोह और प्रेम के साथ प्रकृति के प्रति अनुराग और हास्य-व्यंग्य की भावना भी इनकी रचनाओं में पाई जाती है।

गिरिधर गोपाल

नए कवियों में सबसे विषादपूर्ण स्वर गिरिधर गोपाल का है। जलती चिता की लपटों और उसके बुझ जाने पर एक मुट्ठी अवशेष राख से 'अग्निमा' के गीतों का जन्म हुआ है। इनमें व्यथा की आग और निराशा का ठंडापन दोनों परिव्यास हैं। मृत्यु के आघात ने कवि के मन को इस सीमा तक झकझोर दिया है कि उसे लगता है उसके भीतर का जीवनसार समाप्त हो गया और अब वह एक शव से अधिक और कुछ नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि दृष्टि और कल्पना में जो वस्तुएँ और चित्र घूमते हैं जैसे मृत्यु तूफ़ान और श्मशान, बुझता दीपक टूटा कगार और दरार से युक्त धरती, संध्या मुरझाया फूल और टूटा सितारा, सुनसान मैदान झरता पत्ता और नगा ठूँठ आदि, उनसे केवल विनाश, नश्वरता, विषाद और उदासीनता की भावनाओं की सृष्टि होती है।

विरह तो कभी न कभी प्रेम के जीवन में आता ही है चाहे वह प्रारम्भ में आए या बीच में या अंत में। ऐसी दशा में जीवन के प्रति यह नकारात्मक दृष्टिकोण कहाँ तक स्वाभाविक है, यह संभवतः पूछा जा सकता है। पर एक जीवन ऐसा होता है जिसमें मिलन-विरह का क्रम बना रहता है, दूसरा ऐसा जिसमें यह टूट जाता है। इस आशा में कि मिलन कभी न कभी होगा ही, प्रेमी विरह की पीड़ा को उसकी भूमिका समझकर साहस के साथ पार कर जाता है, यहाँ तक कि ऐसा दीर्घकालीन विरह जैसे उर्मिला का या ऐसा जीवन-व्यापी विरह भी जैसे राधा का जीवन के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण नहीं उत्पन्न करता। ऊपर की स्थितियों में आशा को स्थान इसलिए है कि प्रेमास्पद जीवित हैं; पर 'अग्निमा' में तो जीवन के प्रारम्भ में ही प्रेयसी को छीनकर मृत्यु मिलन की सभी संभावनाओं को नष्ट कर गई है।

इस प्रकार की घटनाओं का प्रभाव सामाजिक दृष्टि से बहुत विघातक होता है। पहली बात यह कि एक विशिष्ट व्यक्ति का जीवन नष्ट हो गया। दूसरे यह कि व्यापक जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण बदल गया। तीसरे यह कि उसी दृष्टिकोण के अनुकूल अब वह कला की सृष्टि करेगा और चौथी बात यह कि जो ऐसी कला के सम्पर्क में आवेगा, उस पर उसका प्रभाव वैसा ही निराशावादी होगा।

जहाँ तक जीवन की विषम परिस्थिति से उत्पन्न विषादपूर्ण मनोवृत्ति और उसकी परिधि को आच्छादित करने वाली छटपटाहट और घुटन के वातावरण के चित्रण का सबंध है गिरिधर गोपाल को 'अग्निमा' में पूर्ण सफलता मिली है—

मेरा जीवन केवल मेरा,
मुझ पर मत अश्रु बहाओ तुम।
इतने खिलते हैं जब जग में
क्या है यदि एक न खिल पाया,
जैसे तैसे ढोएगी ही
तम-भार अभागी यह काया;
कब एक सितारे से नभ का शृंगार अधूरा रह जाता?
दम तोड़ रही इन साँसों को अब मत जीना सिखलाओ तुम।
विपरीत दिशाओं के राही
हम आज मिलें तो क्या विस्मय,
दो बार न फूल खिला करते
चाहे जितनी हो मुग्ध मलय;
जिनकी अरुणाई झूम रही लपटों की आँखों में मद सी,
उन प्राणों पर अब सपनों के हिमहास न आज बिछाओ तुम।

पर जीवन में कुछ ऐसी अनिर्वचनीय सुन्दरता है कि वह गहरे से गहरे विषाद को धीरे-धीरे धोकर फिर आलोक, आकर्षण और आनन्द

शांति मेहरोत्रा

शांति जी के सात काव्य-संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं (१) निष्कृति (२) मरीचिका (३) विदा (४) रेखा (५) पग ध्वनि (६) पंच प्रदीप और (७) चाणक्य।

गीतों का मुख्य विषय प्रेम है। यह प्रेम लौकिक एवं व्यक्तिगत है। अत्यत तीव्रता और गहराई से प्रेम को ग्रहण करते समय हुए आघात, असफलता और जलन को शांति जी ने अब तक सहन किया है। 'निष्कृति' मे जो शांति जी की सबसे पहिली रचना है प्रेम के सम्बन्ध में प्रेमी और प्रेमिका की भावना में यह अंतर दिखलाया गया है कि प्रेमी में सांसारिकता की प्रधानता है प्रेमिका में साधना की। अतः प्रेमी से उन्हें इस बात की शिकायत है कि उसने उनका मूल्य नहीं जाना और संसार से इस बात की शिकायत कि यहाँ सच्चा अनुराग मिलना कठिन है। पर प्रेम प्रेम ही है। वे उसे भुला नहीं पातीं। आगे चलकर वे उसके लिए आँसू बहाती हैं और इस बात को समझाती हैं कि यदि दो व्यक्ति एक दूसरे को प्रेम करते हैं तो उनके दूर रहने से कोई अंतर नहीं पड़ता। एकाध स्थान पर उन्होंने ऐसा भी संकेत किया है कि वे उसकी किसी भूल पर उससे अप्रसन्न हो गई थीं। वह भूल क्या थी, वे ही जाने, पर सब कुछ होते हुए भी उनकी अनन्यता में कभी कोई अंतर नहीं आया।

शांति जी के गीतों में उनका व्यक्तित्व पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित हुआ है। यह व्यक्तित्व स्नेह, कृतज्ञता, मधुरता, सरलता, पीड़ा और वैराग्य की भावनाओं के तानों-बानों से निर्मित है। 'विदा' •जैसी छोटी पुस्तिका में भी जिसमें विवाह के अवसर पर सबसे विदा माँगते समय भूले-भटको, अध्ययन-कक्ष और सिसकते गोदाम तक को वे नहीं भुला पातीं उनकी कृतज्ञता की भावना पूर्ण रूप में उभर आई है। मुझे तो वह विदा शकुंतला को विदा

जैसी प्रतीत होती है। भाव-जगत में जहाँ तक अपना सम्बंध है वहाँ तक उनका कर्म धर्म से, सत्य स्वप्न से, अनुराग वैराग्य से एवं निकटता दूरी से अनुशासित हैं अर्थात् वे कोई ऐसा काम नहीं कर सकतीं जो धर्म के अंतर्गत न आता हो। सत्य से उन्हे स्वप्न का जगत अधिक प्रिय है, अनुराग से रंजित हृदय में वैराग्य भी भरा हुआ है और कभी-कभी उन्हें पास आना अच्छा लगता है, पर केवल कभी-कभी। संसार उनका विरोध करता है। उन्हें क्षोभ उत्पन्न होता है। पर वे हृदय से इतनी भली है कि उनके मुख से बार बार यही निकलता है कि वे उसका विरोध नहीं करेंगी। विरोध उनका स्वभाव है ही नहीं। यदि कोई दोष देता है तो वे यही कहती हैं कि मैं उस दोष को स्वीकार करूँगी, यद्यपि स्वयं निर्दोष रहूँगी। अतः सबका विरोध सहन करते और स्वयं किसी का विरोध न करते हुए अपनी भावना को दृढ़ता से ग्रहण करना और लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ते जाना ही शांति जी का स्वभाव है।

जैसे अन्य आधुनिक कवियो की वैसे ही इनकी कविता भी वृत्तियों की अनुवर्तिनी है। अंतःकरण को न जाने कितनी वृत्तियों को इन्होंने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक ढंग पर अभिव्यक्ति दी है। बाहरी संघर्ष और मानसिक संघर्ष दोनों के प्रबल हो उठने पर भी इनकी प्रेम-भावना कर्तव्य और धर्म-भावना दोनों से नियंत्रित है। ये सत्य भी उसे ही स्वीकार करती हैं जो ज्ञान से अनुशासित एवं आदर्शोन्मुख हो। जो भावना कल्याण नहीं करती, उस भावना को ये भावना नहीं मानतीं। इस प्रकार प्रारभ से ही इन्होंने अपना आदर्श बहुत ऊंचा रखा है। हृदय की दो विरोधी भावनाओं के कारण इन गीतों में विलक्षण मार्मिकता और चमक आ गई है। विनम्रता के साथ स्वाभिमान, मोह के साथ अभिशाप, हास्य के साथ अश्रु, मुक्ति के साथ बंधन की भावनाएं यहाँ-वहाँ बिखरी पड़ी हैं। इनके निराशा के चित्र तो बड़े मार्मिक बन पड़े हैं।

इनके गीतों में संसार के प्रति विद्रोह की भावना तो पाई जाती है; परन्तु विद्वेप की नहीं। शांति जी के मन की गति ऐसी नहीं जो वस्तुओं को

तोड़ती फोड़ती चलती है, वरन् ऐसी है जो सभी के साथ समझौते के लिए लालायित रहती है। इसी से इनके गीत एक अत्यंत संस्कृत स्वभाववाली रमणी के संयमशील हृदय से निकले मधुर मर्मस्पर्शी जीवन-गीत हैं। स्वप्न और सत्य में से इनका झुकाव स्वप्न और शांति एवं क्रांति में से शांति की ओर है। निश्चित है कि संसार से ये संतुष्ट नहीं हैं, पर यह भी निश्चित है कि संसार का बुरा ये नहीं चाहतीं। इनका कहना है कि ससार का विरोध किए बिना भी इसी के भीतर सत्य, शिव, सुंदर का अपना पृथक नीड़ निर्मित किया जा सकता है। यहीं तक नहीं, संसार के कण-कण को सुख और आनंद का धाम बनाया जा सकता है। इनका विश्वास है कि घुमा-घुमाकर अंत में सबको संसार से ही काम पड़ता है।

जीवन को इन्होंने सत्य और अनुराग का स्थल माना है। उसे सफल बनाने में ही उसकी सार्थकता वे मानती हैं। उसमें जो सुख-दुःख, हर्ष-शोक, जय-पराजय, अंधकार-आलोक हैं, उन सबका धैर्य और संयम के साथ स्वागत करना चाहिए। प्रेमी का जीवन तो और भी कठिन होता है। उसमें तो अगाध सहन शक्ति होनी चाहिए।

प्रेम की भावना इनकी ऐसी नहीं है जो व्यक्तिगत जीवन को घेरकर बैठ जाय या उसके विकास को रोक दे। भावों की व्यापकता शांति जी की रचनाओं में बराबर पायी जाती है। इस व्यापकता ने दो दिशाएँ पकड़ी हैं (१) नारी जागरण की (२) लोक-कल्याण की। ये दोनों ही प्रवृत्तियाँ उनके नवीन काव्य को नवीन पंख देती रहेंगी।

प्रकृति का प्रयोग इन्होंने अधिकतर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए किया है। उसके प्रति उनका वह अनुराग लक्षित नहीं होता जो पंत या गुरुभक्त सिंह का है। प्रकृति में समानान्तर भावों की स्थापना उन्होंने की है। भावनाओं को स्पष्टता और तीव्रता प्रदान करने के लिए ही वे बूंद और मरुभूमि, नीड़ और विहग, रात और प्रात, कोयल और आम्रवन, अलि और कमल को प्रायः स्मरण करती हैं। कहीं-कहीं उद्दीपन की दृष्टि से भी उन्होंने प्रकृति को स्मरण किया है।

अपने गीतों के संबंध में शांति जी स्वयं कुछ न कुछ कहती रहती हैं। पहली बात यह है कि उन्हे वास्तविक शांति गीत लिखने में ही मिलती है। वे जानती हैं कि अपने दुःख की अभिव्यक्ति इन गीतो द्वारा ही उन्होंने की है, पर इन्हें पढ़कर यदि किसी को पीड़ा हुई तो उन्हें कष्ट होगा। दूसरी बात यह है कि इनकी प्रेरणा है व्यक्तिगत, पर लक्ष्य है लोक की भावना को प्रभावित करना; अतः उन्होंने 'स्वांतः सुखाय' और 'बहुजन हिताय' के पुराने झगड़े को मिटाकर दोनों में सामंजस्य स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया है। शेली और पंत के समान काव्य की उत्पत्ति इन्होने भी मन की अनंत वेदना से मानी है। इनके अनुसार सफल कवि प्रेम में असफल रहता है। काव्य प्रभावशाली उसी समय होगा जब वह हृदय से निकला होगा। एक बात इन्होंने और भी मानी है और वह यह कि कविता का वास्तविक अर्थ केवल वे ही व्यक्ति ग्रहण कर पायेंगे जिनका हृदय अभिमान से रहित और निर्मल है।

इसके अतिरिक्त इन्होंने अपनी प्रथम कृति 'निष्कृति' में मारवाड़, बगाल, स्वाधीनता, गुरुदेव, डा० पीताम्बर दत्त बड़श्वाल को लक्ष्य करके भी कुछ कविताएँ लिखी हैं जो महत्वपूर्ण नही हैं।

कला की दृष्टि से भाषा की सरलता सराहनीय है। उर्दू के शब्दों का प्रयोग ये निःसंकोच भाव से करतीं हैं और कहीं-कहीं ब्रजभाषा के शब्दों के प्रति भी उन्होंने अपनी ममता प्रकट की है। बाद की रचनाओं में तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ता गया है। 'निष्कृति' और 'मरीच्चिका' आदि रचनाओं में शब्दो के अशुद्ध प्रयोग भरे पड़े हैं जैसे नर्क, नाहीं, परातंत्र, आगी, अनेको, वैराग, विंती, करी, इकिस आदि। कहीं-कहीं छंदों में शब्दों को ये ठीक से नहीं खपा सकी हैं, इसी से 'रेखा' में कहीं 'से' पंक्ति के प्रारभ में आ गया है, कहीं 'सा' और कहीं 'के'। इससे यह सिद्ध होता है कि शांति जी के छंद और शब्द सभी कहीं खराद पर उतरे हुए नहीं हैं। इनके गीतों में भावों का महत्व विषम है अर्थात् ये जितने मनोभावों को अभिव्यक्ति देती हैं उनमें से सब समान रूप से महवत्वपूर्ण नहीं हैं। कुछ गीतों में

माधुर्य कम और चिंतन अधिक है। शब्दो और वाक्यांशों की पुनरावृत्ति से भी कहीं-कहीं ये प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हुई हैं। 'रेखा' में इसकी मात्रा कुछ अधिक हो गई है। समय के साथ शांति जी की कृतियों में प्रौढ़ता आती गई हैं। शब्द सौंदर्य, लाक्षणिकता और प्रतीक-विधान तीनों की ओर अब वे अधिक ध्यान देने लगी हैं। जीवन के अनुभव से खिंचे हुए सिद्धान्त वाक्य उनकी रचनाओं में जगमगाते दिखाई देने लगे हैं।

चारो ओर की परिस्थितियाँ और अपनी मानसिक स्थिति ही अधिकतर उनकी प्रेरणा रही हैं। इस प्रेरणा ने गीतों के सैकड़ों सरस सुमन खिलाए हैं।

गीति-काव्य के क्षेत्र 'चाणक्य' शांति जी का एक नया प्रयोग है। खंड-काव्य होने से इसके गीतो से मुक्तकों या गीतियों की स्वतन्त्रता छिन गई है। ये गीत एक शृंखला मे बँधे हुए हैं और सब मिलकर चाणक्य के जीवन की कहानी पूरी करते हैं। गीतों, मुक्तकों और पदों को एक लड़ी में गूंथकर किसी विशेष भाव या कथानक की अभिव्यक्ति हिंदी साहित्य मे कभी हुई ही नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि साकेत का नवम सर्ग, कामायनी का इड़ा प्रसंग, बच्चन जी का निशा-निमंत्रण और तुलसी की विनय-पत्रिका एवं गीतावली हमारे सामने हैं। फिर भी किसी महान् व्यक्तित्व को कल्पना के ऐसे कटे-छँटे सांचे में इस प्रकार पहले कभी नहीं ढाला गया। साकेत, निशा-निमत्रण, कामायनी और विनय पत्रिका विरह, मिलन और भक्ति की भावना मात्र प्रकट करती है, गीतावली का कथानक खंडित है और यह सिद्ध हो चुका है कि वह कोई व्यवस्थित ग्रंथ न होकर एक संग्रह-ग्रंथ है। चाणक्य को एक प्रभावशाली काव्य-मूर्ति के रूप में लेखिका ने सचेष्ट भाव से निर्मित किया है। इस तुलना का आशय यह कदापि नहीं है कि शांति जी तुलसी, प्रसाद या मैथिलीशरण से बड़ी कवि हैं या उनकी कृति इन कवियो की कृति से अधिक श्रेष्ठ है। नहीं, ऐसी बात नहीं है। कहना केवल इतना ही है कि वर्णनात्मक काव्य को भी गीतों के आधार पर लिखा जा सकता है और इस प्रयत्न को अपनी

सम्पूर्णता और व्यापकता में, नई कविता में, पहली बार शांति जी ने सफल मोड़ दिया है।

इस कृति में गीतों का प्रयोग हुआ है और कहानी स्वयं चाणक्य लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर आत्म-विश्लेषण के रूप में सुना रहा है। शैली के इन बंधनों ने प्रारंभ से ही इस ग्रंथ को एक विशेष रूप दे दिया है। पहली बात यह कि इसमें मुख्य और महत्वपूर्ण घटनाएँ ही आई हैं—केवल वे घटनाएँ जो इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हैं। ऐसी दशा में उनका ऐतिहासिक क्रम तो ठीक है; पर वे सूचना मात्र बनकर रह गई हैं। विवरण क्यों कि गीति-काव्य की प्रकृति के अनुकूल नहीं पड़ते; अतः नहीं के बराबर हैं। दूसरे, जहाँ तक विचारों का प्रश्न है, यह पहले से ही स्पष्ट रहता है कि ये लेखिका के नहीं, चाणक्य के हैं। उदाहरण के लिए ब्राह्मण धर्म की प्रशंसा के साथ बौद्ध या जैन धर्म पर जैसा आक्षेप यहाँ किया गया है वैसा आक्षेप अपनी ओर से हमारी उदार-हृदया लेखिका न करती। इसी प्रकार नारी और प्रेम के संबंध में भी चाणक्य की ओर से कुछ ऐसे विचार व्यक्त किए गए हैं जो सर्वमान्य या सर्वग्राह्य नहीं।

शांति जी का चाणक्य मनोबल सम्पन्न, देशप्रेमी, दूरदर्शी, कर्मण्य, स्वाभिमानी, कूटनीतिज्ञ, प्रतिकार भावना से पूर्ण, ब्राह्मणत्व का अभिमानी, आस्तिक, वर्णाश्रम धर्म का समर्थक और एक महान् साम्राज्य का निर्माता है। भावना की कोमलता से अधिक बुद्धि की प्रखरता उसे प्राप्त है। नाटक-साहित्य में द्विजेन्द्रलाल राय, जयशंकर प्रसाद और रामकुमार वर्मा ने अपनी अपनी भावना के अनुकूल चाणक्य की मूर्ति गढ़ी है। शांति जी ने भी एक काव्य-मूर्ति निर्मित की है जो सबसे भिन्न और आकर्षक है।

इस गीति-प्रबंध के नायक का नाम सुनकर संभव है कुछ पाठक प्रारंभ में थोड़ा चौंकें। वे सोच सकते हैं कि कैसा पात्र हमारी कवयित्री ने चुना है! राम कृष्ण और बुद्ध नहीं, मनु, कर्ण और लक्ष्मण नहीं, पृथ्वीराज, प्रताप और शिवा नहीं, वैदेही, राधा और गोपा नहीं, उर्मिला पद्मिनी और नूरजहाँ नहीं—चाणक्य! पर किसी भी खंड-काव्य में जितना आकर्षण

संभव है, उतना इस कृति में भी है। इसकी सरसता का एक कारण तो इसके गीत ही हैं। प्रबंध-काव्य में पाठक के मन की चिंता यही तो होती है कि वह विवरण को पार कर कोमल मधुर स्थलों को शीघ्र से शीघ्र छूना चाहता है। शांति जी ने विवरण की झंझट इस खंड-काव्य में रखी ही नहीं है। महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं की चर्चा मात्र कर या अपनी बात संकेत से समझाकर वे आगे बढ़ गई हैं। दूसरे, एक बहुत बड़ा तत्त्व जिसके कारण चाणक्य का काव्यत्व बना हुआ है, यह है कि इसमें बहुत से गीत शांति जी ने ऐसे रखे हैं जो सामान्य जीवन पर भी लागू होते हैं। उन्हें निकालकर अलग संग्रह में भी दे दिया जाय तो यह पता तक न चलेगा कि ये किसी प्रबंध-काव्य से लिए गए हैं। ये गीत न केवल चाणक्य, न केवल हमारी-आपकी, बल्कि शांति जी की भावना भी व्यक्त करते हैं। इनकी गणना भावना-मूलक व्यक्ति परक काव्य में ही होनी चाहिए, यद्यपि वस्तुपरक काव्य के साथ व्यक्तिपरक काव्य का यह मिश्रण कुछ विचित्र-सा लगेगा। इससे एक बात सिद्ध होती है और वह यह कि शांति जी की प्रतिभा मूलतः गीतात्मक है। देखिए—

(१)

जीवन में यदि शाप न हों, वरदान कहाँ से आयें ?
रजनी है प्रातः की जननी,
नभ के लिए व्योम है अवनी,
आह न हो कवि में तो नूतन गान कहाँ से आयें ?

(२)

मैंने हार नहीं पहचानी किंतु न जय भी पाई !
हार जीत से बहुत दूर मैं
आदि अंत से मुक्त राह हूँ,
छू न जिसे कोई भी पाया
मैं ऐसी ही लिए चाह हूँ,
चलती रही सदा पर मेरी आशा भरी लड़ाई।

(३)

जिस तरह से भी कटे दिन काटता चल।
प्रश्न तो है लक्ष्य का, पथ का नहीं है,
प्रश्न तो इति का रहा अथ का नहीं है;
सुन नियति की मुग्ध पगध्वनि, मंजु पायल।

(४)

जब वसंत से मोह नहीं तो पतझर से भय कैसा ?
इस जीवन के लंबे पथ पर
कभी न मांगी छाया,
सहचर या पाथेय न इस पर
अब तक कोई आया,
फिर इस पर हो सके भला शूलों का संशय कैसा ?
लक्ष्य प्राप्ति है इष्ट नहीं
वांछित है चरणों का क्रम,
देता है आदेश मुझे
मेरी वाणी का संयम,
कर्म और फल का होगा बोलो क्रय-विक्रय कैसा ?
जब वसंत से मोह नहीं तो पतझर से भय कैसा ?

रमानाथ अवस्थी

रमानाथ अवस्थी के 'आग और पराग' में प्रेम की कोमलता और जीवन की कठोरता, भाव की मादक गंध और दुःख की ज्वाला दोनों के स्वर पाए जाते हैं।

मिलन का माधुर्य और वियोग की वेदना दोनों ही इनकी अनुभूति-जन्य हैं; अतः उनमें एक प्रकार का विलक्षण रस लहरा रहा है। सभी गीतो के मूल में प्रेरणा काम करती दिखाई देती है। मानसिकता की अधिकता के कारण ये गीत सूक्ष्म भावापन्न और मर्मस्पर्शी हो उठे हैं। प्रेम को जीवन के लिए ये अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानते है, साथ ही आत्म-समर्पण की निश्छल-भावना भी इनमें पाई जाती है। प्रेमास्पद से जहाँ कहीं इन्होंने एकात्मभाव का अनुभव किया है, वहाँ पाठक भी वैसी ही तल्लीनता का अनुभव करता है—

(१)

धीरे धीरे बात करो सारी रात प्यार से।
भोर होते चाँद के ही साथ-साथ जाऊंगा,
हो सका तो शाम को सितारों के सँग आऊंगा,
धीरे धीरे ताप हरो प्यार के अँगार से।
देख देख हमें-तुम्हें चांद गला जा रहा,
क्योंकि प्यार से हमारा प्राण छला जा रहा,
धीरे धीरे प्राण ही निकाल लो दुलार से।

(२)

मीत मेरे कौन है वह बात ?
बन गई जो नयन की बरसात ?

शापमय तम को जलाकर
जल रहा दिनमान,
कालिमा को चाँदनी से
धो रहा हिमवान,
किन्तु ऐसा क्या हुई वह बात ?
जो कि काली रह गई यह रात ।

(२)

सो न सका कल याद तुम्हारी आई सारी रात
और पास ही बजी कहीं शहनाई सारी रात
मेरे बहुत चाहने पर भी नींद न मुझ तक आई
ज़हरभरी जादूगरनी-सी मुझको लगी जुन्हाई
मेरा मस्तक सहलाकर बोली मुझसे पुरवाई—
दूर कहीं दो आँखें भर भर आईं सारी रात
और पास ही बजी कहीं शहनाई सारी रात

प्रणय-संबंधी इन भाव-प्रधान रचनाओं के साथ जीवन-संबंधी विचार-प्रधान रचनाएँ भी इस कृति मे हैं। कवि जीवन-मरण, सुख-दुःख, धरती-आकाश व्यक्ति-विश्व सभी पर विचार करता पाया जाता है। विरोधी तत्वों पर दृष्टि डालते हुए कहीं वह द्विधा की स्थिति में है, कहीं उन्हें समान दृष्टि से देखता है और कहीं उसका झुकाव सुखपक्ष की ओर हो जाता है। कुछ भी हो, विषमताओं के भीतर अपने व्यक्तित्व की दृढ़ता उसने प्रमाणित की है—

मेरा जीवन किसी डाल पर खिलता-खिलता फूल है।
मुझे न हँसने दिया समय के निष्ठुर झंझावात ने,
मुझे न सोने दिया चाँद पर मरने वाली रात ने,
बादल, बूँदी, हवा और तूफ़ान नित्य सब आए,
किंतु समय से पहले मेरी छाँह न ये छू पाए,
पतझर मेरा क्या कर लेगा जब मधुऋतु अनुकूल है ?

अनुभूति को रमानाथ जी ऐसी घटनाओं के सहारे चित्रित करते हैं कि सहृदयों का मन सहसा आंदोलित होने लगता है। इनकी भाषा बहुत ही मधुर और अकृत्रिम है। कुछ नए और लंबे छंदों को साधने में ये बहुत सफल हुए हैं। कहीं-कहीं छंद के प्रवाह को ये किसी टुकड़े से रोक देते हैं जिसके भाव विशेषरूप से चमक उठता है।

जगदीश गुप्त

जगदीश गुप्त ने अपने अप्रकाशित संग्रहों के कई नाम दिए हैं— अनंगिनी, गोरी रात और नई कविताएँ।

अनंगिनी का विषय प्रेम है। प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे के लिए गहराई से अनुभव करते हैं। अंत में समाज के सामने व्यक्ति को झुकना पड़ता है। प्रेमिका का विवाह कहीं अन्यत्र हो जाता है और जैसा प्रेम की घटनाओं में प्रायः होता है प्रेमी उसकी मधुर स्मृति को हृदय में बसाकर व्यथा के समुद्र में डूब जाता है।

इन गीतों में एक प्रकार की गंभीर उदासी भरी हुई है। मन की उदासी का वर्णन करते हुए प्रकृति के भी ऐसे खंड चित्र आँखों के सामने लाए गए हैं जिनसे उदासी बरसती है। प्रेमिका की बहुत सी मनोदशाओं का वर्णन बहुत सफल बन पड़ा है। उसे अनेक स्थितियों और मुद्राओं में कवि ने अंकित किया है। ऐसी मुद्राओं और चेष्टाओं की उदास छवि जगदीश जी जैसा कोई सफल चित्रकार ही अंकित कर सकता था। नियति कहिए, परिस्थिति कहिए या जीवन की वास्तविकता कहिए, उसके सामने व्यक्ति यहाँ बहुत झुका, टूटा, परास्त और चकनाचूर लगता है। व्यक्ति शिष्ट है, इसी से उसके रोम-रोम से जो आह निकल रही है, वह बड़े संयम के साथ; फिर भी पाठक उस वेदना की तीव्रता और पीड़ा के कांटे को अपने हृदय में अनुभव करता है।

प्रेम में निराश होने पर स्वाभाविक था कि प्रकृति में भी वह निराशा के दर्शन करे। उसकी दृष्टि से इस संसार में चारों ओर अहेरियों का राज्य है। एक बार अदृष्ट से समर करने की बात भी वह सोचता है। अपने जीवन में वह इस परिणाम पर पहुँचा है कि भारतीय भूमि पर समष्टि के सामने

व्यष्टि कभी नहीं पनप सकी अर्थात् व्यक्ति की तुलना में जीत सदैव समाज की ही होती रही है—

(१)

समूह के समक्ष व्यक्ति को स्वतंत्र मानना,
बहुत बड़ा प्रमाद है, बहुत बड़ी विडम्बना;
शरीर लाज-बद्ध है,
प्रणय समाज-बद्ध है,
रुको कि आँख से ही पास खींच लूं, दुलार लूं।
रुको तनिक निहार लूं

(२)

कहा सुनी के बाद भी मुझे समीप जानना,
ग़रीब की कराह का कभी बुरा न मानना;
न सोचना कि अन्य हूँ,
हज़ार बार धन्य हूँ,
कभी तो तुम मेरे लिए दृगों में नीर भर सके।

(३)

न पास पास हों कभी,
न फिर उदास हों कभी,
अतीत की व्यथा-कथा न मैं कहूँ न तुम कहो।
जहाँ रहो सुखी रहो।

'गोरी रात' मे दुःख का कोई चिह्न शेष नहीं है। एक प्रकार से इसके गीत 'अनंगिनी' की प्रतिकूल भावना से निर्मित हैं। अधिकतर रचनाएँ चाँदनी रात पर हैं जिनमें चंद्रमा और ज्योत्स्ना के प्रणय का वर्णन है। प्रकृति के सौंदर्य और आनंद पक्ष को हृदय की पूरी उमंग के साथ यहाँ चित्रित किया गया है। चाँद को यहाँ नारी के रूप में स्वीकार किया गया है; अतः प्रकृति में चेतना की स्थापना करने के कारण जगदीश जी के गीत छायावाद का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। प्रणय-भावना यहाँ वासना

में बढ़कर परिणत हो गई है; अतः कई मिलन चित्र अपूर्व रम्यता और स्पंदन से युक्त हैं। दूध से धुली दिशाओं, कपूरी चाँदनी, रजत किरणों, रुई के पहल से बादलों, उजले तारों, डाली पर खिलती शेफाली, सरोवर में खिलते श्वेत कमलों, धरती पर बिछे चमकीले रजकणों और अंतरिक्ष में उड़ते हंसों का वातावरण पाठक के नेत्रों के सामने एक विचित्र सौंदर्य का इंद्र-जाल बुनकर चेतना को मुग्ध कर जाता है।

(१)

इस समीरन में मिली होगी तुम्हारी सांस भी।
ये रुई के पहल से हलके धवल बादल बिचारे,
जा रहे प्रतिपल तृषाकुल स्वर्ग-सरिता के किनारे,
ये विरल छिटके नखत, ये दूध छलकाती दिशाएँ,
छा रहा होगा तुम्हें, यह स्वप्न सा आकाश भी।

(२)

तरुनाई-सी खिली जुन्हाई, घुले पुलक से प्रान।
किसने चूमा चाँद कि मुख से मिटते नहीं निशान।

जगदीश जी की नई रचनाएं चिंतन-प्रधान हैं। उनके अनुसार सत्य का एक ऐसा स्वरूप भी होता है जिस पर सबकी दृष्टि नहीं पड़ती। उसे केवल कवि ही जानता और प्रत्यक्ष कर सकता है। कई रचनाओं में इन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि विनाश जब आता है तो वही सत्य प्रतीत होता है; पर वह सत्य का अंतिम रूप नहीं है। प्यार बहुत बड़ी निधि है; पर वह संबल ही है, साधन ही है। लक्ष्य है जीवन। और जब जीना है तो रोकर नहीं, हँसकर ही जीना चाहिए। इन रचनाओं में इनकी एक रचना 'ज़िंदगी के रास्ते' बहुत महत्वपूर्ण है और कवि के दृष्टिकोण को अन्य रचनाओं की अपेक्षा अधिक स्पष्टता एवं अधिक मार्मिकता के साथ हमारे सामने रखती है। इसमें दिखाया गया है कि जीवन प्यार से बहुत बड़ी चीज है और वह एक व्यक्ति का न होकर समस्त धरा का होना चाहिए।

इस प्रकार प्रेम की वेदना से निकलकर प्रकृति की सुंदरता को प्यार करते हुए जगदीश जी व्यापक जीवन की ओर बढ़ रहे हैं।

ये ज़िंदगी के रास्ते—
केवल तुम्हारे वास्ते।
मैं सोचता था एक दिन।
केवल तुम्हारे स्नेह की अमराइयों में घूमकर
केवल तुम्हारे रूप की परछाइयों में झूमकर
केवल तुम्हारे वक्ष की गहराइयों को चूमकर
सब बीत जायेगी उमर।
मैं सोचता था एक दिन।
पर आज यह सब झूठ है।
तब झूठ था, अब झूठ है।
यह ज़िंदगी का सत्य, सच मानो कि तुमसे भी बड़ा
इस तक पहुँचने को मनुज होता रहा गिर गिर खड़ा
इस सत्य के आगे बिछुड़ना और मिलना एक है
इस सत्य के आगे मुरझना और खिलना एक है
इस सत्य के आगे सभी धरती हृदय का पात्र है
मेरा तुम्हारा स्नेह इस पथ की इकाई मात्र है
मानो न मानो तुम सही
पर सोचता हूँ मैं यही
ये ज़िंदगी के रास्ते—
सारी धरा के वास्ते।

'अनंगिनी' की सभी रचनाएं एक ही छंद में लिखी गई हैं। वह छंद है प्रमाणिका। यह छंद इनके हाथ में पड़कर बहुत-कुछ मँज-सा गया है; पर उसके शास्त्रीय रूप की रक्षा ये सभी स्थानों पर नहीं कर पाए। इनके भावों को वहन करने में इनकी भाषा पूर्ण समर्थ है। इसके लिए ये ब्रज, ग्रामीण, फ़ारसी तथा संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग निस्संकोच

भाव से करते हैं; फिर भी शब्दो के कुछ अशुद्ध रूप जैसे क्यूं, वो, तर्क, निहारिका आदि रह ही गए हैं। चाँद को ज्योति का कमल फूल बतलाकर एक स्थान पर इन्होंने साग रूपक का बहुत सुंदर निर्वाह किया है। उपमान कभी-कभी ये ज्यामिति शास्त्र और विज्ञान से भी चुन लेते है। इनकी रचनाओं में नए प्रतीको और अनूठी कल्पनाओं के साथ सौंदर्य, संगीत और सामंजस्य तीनो के तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

शिवचंद्र नागर

शिवचंद्र नागर की कविताओं का पहला संग्रह 'ज्योत्स्ना' नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें वस्तु-परक और व्यक्ति-परक दोनो प्रकार की रचनाएं पाई जाती हैं। जुगनू, झोंपड़ी, सरिता और ताजमहल जैसी रचनाओं को पढ़कर लगता है कि कवि अपने मन की उलझन से मुक्त होकर कभी-कभी बाह्य जगत पर भी काव्यमय दृष्टि डालता है। पर आगे चलकर यह दृष्टि अपने भीतर ही लौट आई और वहीं सीमित हो गई।

प्रणय सम्बन्धी गीतो में मिलन से लेकर विदा तक की, चर्चा है। वहाँ हृदय ही पिघल कर जैसे भावना बन गया है। इस भावना की बहुत सी लघु लहरियाँ मिलन की कोमल धूप और वेदना की गहरी छाया में रम्यता ग्रहण कर रही है।

कला अभी परिपक्व नहीं हो पाई। कुछ प्रमुख छायावादी कवियों का प्रभाव अनजाने इन गीतों पर पड़ गया है। भावना के आघात को सँभालने में शब्द कहीं-कहीं असफल रहे हैं। फिर भी अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ ऐसी साफ-सुथरी पंक्तियाँ पाई जाती हैं—

प्रेम का सुनसान पथ है
औ' हृदय की रागिनी है
गुह्यतम उर के निलय में
टिमटिमाती चाँदनी है
साध्य पलकों में छिपा है
फिर हृदय की साधना क्या ?
इस हृदय की भावना क्या ?

'नागर' जी के दूसरे काव्य-ग्रथ का नाम 'उर्मि' हैं जिसमें सौ गीत संग्रहीत हैं। गीतों का विषय प्रेम है। इसमें ऐसे स्वाभाविक भावों का वर्णन

है जिनका आदान-प्रदान साधारण रूप से दो प्राणियों के बीच होता रहता है। एक प्रकार से इनमें कवि के मन, मस्तिष्क और जीवन की झांकी मिल सकती है। इनका काव्य क्या है दो प्राणियों के बीच चलने वाले नित्य के व्यापारों का लिखित भांडार है। कवि अत्यधिक भावुक प्रकृति का प्रतीत होता है। उसके अनुराग में आवेश ही नहीं, गहराई भी है और यह निश्चित है कि उसने कहीं घहरा आघात पाया है। प्रेमिका के सौंदर्य और उसकी कठोरता के कुछ वर्णन अनूठे हैं। उसे उपालंभ भी कुछ कम नहीं दिए गए। यह प्रणय-व्यापार विषम भूमि पर चला है; अतः स्वाभाविक है कि इसका अंत निराशापूर्ण हो और प्रेमी एक दिन हताश हो उठे। जैसा कवि ने स्वयं बताया है उसकी असफलता के पीछे दोनों के सम्बन्धों में आर्थिक वैषम्य काम कर रहा है। इतना होने पर भी भावना-लोक में वह प्रेमास्पद से एकात्म-भाव की कामना करता है और दुःखी होने पर भी उसकी प्रेम की मस्ती में कभी कमी नहीं आई।

नागर जी समझते हैं कि संसार प्यार का मूल्य ठीक से कभी नहीं आँक सकता; अतः व्यक्ति की कामना और संसार की प्रतिक्रिया में कैसे ही सामजस्य उत्पन्न हो जाय, ऐसी इच्छा उनके गीतों में यहाँ वहाँ पाई जाती है। जीवन, प्रकृति और संसार की व्याख्या भी उन्होंने कई स्थानों पर प्रेम की दृष्टि से ही की है।

गीतों में भावनाओं का ही चित्रण है, घटनाएँ नहीं के बराबर हैं। एक तो कवि प्रणय की साधारण सी बात से भी असाधारण रूप से प्रभावित हो उठता है, दूसरे अपने भीतर डूबकर छोटी से छोटी मानसिक प्रतिक्रिया को बाहर लाना चाहता है अर्थात् अपने अनुभवों और अनुभूतियों में से केवल अत्यधिक तीखे, गहरे, प्रेरणामय और आनंदमय को ही चुनकर काव्यमय बनाने का उसका आग्रह नहीं है; यही कारण है कि पाठक का हृदय कहीं आंदोलित होता है कहीं नहीं। गीत-काव्य में भी भावों की अभिव्यक्ति में तारतम्य स्थापित किया जा सकता है और भावनाओं का

विकास इस प्रकार सामने लाया जा सकता है जैसे विविध सुमनो की माला, इस ओर कम गीतकारों का ध्यान जाता है।

कला की दृष्टि से इनकी रचनाएँ गीतिकाव्य का सुन्दर उदाहरण उपस्थित करती हैं। शब्दों की कोमलता की ओर इनका ध्यान अपने काव्य-जीवन के प्रारंभ से ही रहा है। कर्कश शब्दों से बचने का ये भरसक प्रयत्न करते रहते हैं। 'उर्मि' के गीतो में 'ना' 'री' 'रे' के प्रयोग द्वारा भी इन्होंने कहीं-कहीं मिठास उत्पन्न की है। शब्दों के अशुद्ध या अप्रचलित प्रयोग कम ही है। जैसे 'ध्वनी' या दुराव की तुक पर 'रुलाव।' पूरे गीत की अपेक्षा कोई छंद या कुछ पंक्तियाँ ही अभी इनकी चमकदार और जानदार होती हैं। प्रतीकों में कूल, चषक, मोती, झोंका आदि के प्रयोग इन्होंने किये हैं।

उर्मि से कुछ पंक्तियाँ लीजिए—

(१)

ये प्याले कभी न छलकें रे !
मैं डूबा रहूँ सदा इनमें।
ये बंद न होवें पलकें रे !
मैं खोया रहूँ सदा इनमें।

(२)

अश्रु बह जाये नयन से
पर न मुँह से आह निकले,
प्राण घुल-घुल कर जलें मृद
पर न मुँह से चाह निकले,
आज तेरी साधना में
बस यही वर माँगते हैं।
दो हमें प्रिय मत कमल
हम तो उपल ही माँगते हैं।

(३)

वह थी व्यथा की साँझ री !

इस हृदय में पीर थी मधु,
और तुम गंभीर थीं मधु,
आँसुओं को छिपाकर भी
तुम बड़ी ही धीर थीं मधु।

पर हमारी दीनता यदि
आज दुनिया देख लेती,
आँसुओं को आँख से
यदि आँख बहता देख लेती,

तो न उसको सहन होती
वह विदा की साँझ री।

वह व्यथा की साँझ री।

नर्मदेश्वर उपाध्याय

नर्मदेश्वर उपाध्याय ने प्यार के बहुत से गीत लिखे और गाए हैं। इनमें सुख के पलो की झलक केवल अतीत की स्मृति के रूप में ही कहीं-कहीं दिखाई देती है। प्रधानता एकाकीपन, थकावट, पछतावे, उदासी और पीड़ा ही की है। जीवन के सूनेपन से कवि इतना घबरा उठा है कि चाहता है नीरवता कैसे ही मुखरित हो जाय। निराशा की छाया में लिखी सबसे मनोरजक इनकी वह रचना है जिसमें इन्होंने यह कल्पना की है कि ये मर गए हैं और शव उठाने से लेकर तिलांजलि देने तक के सारे काम इन्हें अकेले ही करने पडे हैं।

प्रकृति में वर्षा इन्हे बहुत प्रिय है और इसके वातावरण का चित्रण भी ये बहुत सुन्दर करते हैं। बीच बीच मे जीवन और मृत्यु पर भी ये अपने विचार व्यक्त करते रहते है।

अपने युग का स्वागत पूरे उत्साह से इन्होंने किया है। वर्तमान जीवन की विभीषिकाओं से यद्यपि ये अपरिचित नही है, पर इनका विश्वास है कि जिस प्रकार हमारा अतीत गौरवमय था, उसी प्रकार हमारा भविष्य भी मंगलमय होगा।

(१)

सूने घर में दिया जलाकर तुमने बुरा किया।
दुख की अँधियारी में सुख के सपने सिसक सिसक कर,
चढ़ा रहे आंसू के मोती मुसिकानों के शव पर,
कहना था जो आज कह चुका अब कुछ नही कहूँगा,
मन की बातों को कहलाकर तुमने बुरा किया।

(२)

लो इंद्रधनुष के सजे सजाए रथ पर
ये नव अषाढ़ के पहले बादल आए।

माटी के आकुल गीत उसासें भरते,
माटी के आकुल दीप कि जलते बुझते,
सरिता की लहरें सागर पार करेंगी—
यह सोच तिमिर के सूनेपन पर चलते
मेघों के श्यामलशिखरों पर जा-जाकर
किसने किरणों के बँदनबार सजाए।

(२)

नई शक्ति से नई सृष्टि का मैं निर्माण करूँगा।
है मुझको विश्वास रात के बाद प्रभाती होगी,
उषा हमारे लिए सुनहले कलश सजाती होगी
नई दिशा की ओर हमारे चरण बढ़ रहे होंगे,
प्रकृति पुरुष को अभिनंदन के गीत सुनाती होगी
विजय हमारी होगी युग का मैं सम्मान करूँगा।

गीतों और मुक्तछंदों के अतिरिक्त थोड़ी सी ग़ज़लें भी उपाध्याय जी ने लिखी हैं। भाषा इनकी सरस और सरल होती है।

प्रयोगवाद

उत्तर छायावादी काव्य को हमारे समीक्षकों ने दो कोटियों में विभाजित किया है—प्रगतिवादी काव्य एवं प्रयोगवादी काव्य। यह विभाजन बहुत स्पष्ट नहीं है, क्योंकि इन्हीं पिछले पन्द्रह बीस वर्षों में ऐसे काव्य का सृजन और विकास भी होता रहा है जो न प्रगतिवादी है और न प्रयोगवादी।

प्रयोगवादी काव्य का इतिहास एक प्रकार से 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ प्रारंभ होता है। पुस्तक की भूमिका में संपादक 'अज्ञेय' ने प्रयोग शब्द की चर्चा किसी प्रसंग में कर दी थी; अतः हिन्दी के आलोचक को एक नया वाद बनाने का दृढ़ आधार मिल गया। 'दूसरा सप्तक' में उन्होंने इसका विरोध भी किया; पर हिन्दी में कुछ ऐसा है कि यदि आप किसी आरोप का खंडन कीजिए तो वह बात और भी अधिक आवेश के साथ सिद्ध करके आपके मत्थे मढ़ दी जायगी। परिणाम यह हुआ कि जैसे एक दिन अर्थहीन होने पर भी छायावाद शब्द हिन्दी के समीक्षा-साहित्य में प्रवेश कर बैठा था, वैसे ही अब प्रयोगवाद चल पड़ा।

प्रयोगवाद वास्तव में हिन्दी कविता का कोई वाद नहीं है। यदि इसका अर्थ भाव और कला सम्बन्धी नवीनता से है तो ऐसे प्रयोग तो युग-युग में होते रहे हैं और इस दृष्टि से चंद, विद्यापति, केशवदास, रहीम, नाथूराम शंकर शर्मा, अयोध्यासिंह उपाध्याय, प्रसाद, निराला, भगवती चरण वर्मा, बच्चन आदि सभी को हम किसी न किसी रूप में प्रयोगवादी कह सकते हैं। और यदि किसी कवि की उन प्रारम्भिक रचनाओं को जो पुस्तक रूप में प्रकाशित न होने के कारण किसी संग्रह-ग्रन्थ (यहाँ तार सप्तक) में संकलित कर दी गई हैं, प्रयोगवादी कहते हैं, तब तो और भी हास्यास्पद है। 'तार सप्तक' के प्रकाशन के मूल में चाहे कितना ही बड़ा

साहित्यिक उद्देश्य रहा हो, पर उसके पीछे एक स्पष्ट व्यावहारिक दृष्टिकोण भी था, यह न भूल जाना चाहिए। एकदम नए कवियों की कविताएँ प्रकाशित करने के लिए कोई प्रकाशक न उस समय तैयार था और न आज। नई कविता बिकती ही नहीं। प्रकाशक क्या करे? अतः जैसे अभी (सन् १९५३ में) 'राजधानी के कवि' का वैसे ही तब (सन् १९४३ मे) 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ। पर यह बात न जाने कैसे फैल गई है कि 'तार सप्तक' में जिसे भी स्थान मिल गया, वह प्रयोगवादी हो गया। यदि ऐसा मान लिया जाय, तब तो फिर प्रयोगवादी और प्रगतिवादी में कोई अंतर ही नहीं रह जायगा। इन कवियों मे डा० रामविलास शर्मा, नेमिचद जैन, भारतभूषण अग्रवाल और मुक्तिबोध अपने विचारों में साम्यवादी हैं, अतः प्रगतिवादी हैं। यह बात इनकी घोषणाओं से एकदम स्पष्ट हो जाती है :

१. जो व्यक्ति एक विकासोन्मुख साहित्य की आवश्यकताओं को चीह्न कर उनके अनुरूप गद्य लिखे, वह कवि हो भी कैसे सकता है। मेरे बहुत से लेख साहित्य के अ-शाश्वत सत्य, वाद-विवादों से पूर्ण है।

—रामविलास शर्मा

२. पढ़ने में विशेष दिलचस्पी है। राजनीति में भी क्रियात्मक रूप से। मार्क्सवादी और कम्यूनिस्ट भी।

—नेमिचंद जैन—परिचय

३. शौक दो ही चीजों का—सिनेमा और सिगरेट। आजकल राजनीति का अध्ययन अच्छा लगता है। मार्क्सवाद को आज के समाज के लिए रामबाण मानता हूँ। कम्यूनिस्ट हूँ।

—भारतभूषण अग्रवाल

४. क्रमशः मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ।

—मुक्तिबोध

प्रगतिवादी कविता पर जैसे मार्क्स का प्रभाव है, वैसे ही प्रयोगवादी

कविता पर फ़्रायड का। फ़्रायड का प्रभाव कहने का तात्पर्य यह हुआ कि जहाँ तक काव्य के वस्तु-तत्व का संबंध है, कवि मन की गहराइयों में उतरता है। बाह्य वस्तुओं, घटनाओं, नित्य के सम्पर्कों और अध्ययन से न जाने कितने और कैसे-कैसे प्रभाव हम ग्रहण करते रहते हैं। सुख-दुःख की छाया में न जाने हृदय की कितनी भावनाएँ अंतःकरण के अगाध समुद्र में लहरों सी उठती, टकराती और टूटती रहती हैं। सुखद अतीत की न जाने कितनी कल्पनाएँ और बिलखती कामनाएँ कभी दिवा-स्वप्न का रूप धारण करतीं और कभी एक कचोट सी उठा जाती हैं। अंतर की ये अनुभूतियाँ निश्चित रूप से सदैव ही स्पष्ट, सरल, सीधी और रसमयी नहीं होतीं। वे धुँधली, दुरूह, उलझनमयी और शुष्क भी होती हैं। अतः आज के कवि का यह आग्रह कि मन में जो कुछ जैसे उठता है, बुद्धि में जो कुछ जैसे आता है, उसे वैसे ही व्यक्त कर दे, उसे पिछले युगों के कवियों से पृथक करता है। ऐसी परिस्थिति में रस और साधारणीकरण की आशा करना व्यर्थ है। उसका यह उद्देश्य ही नहीं है। कविता का यह उद्देश्य होना भी चाहिए या नहीं, यह दूसरी बात है—कम से कम विवादास्पद तो अवश्य है।

मन की उलझी भावना को व्यक्त करने में कवि की अभिव्यक्ति खंडित भी हो सकती है। कवि यदि जान-बूझकर दुरूह नहीं बना है तो उसकी असफलता किसी सीमा तक क्षम्य मानी जा सकती है। पर ध्यान से देखें तो इस सूक्ष्म उलझन में भी कहीं एक छिपी व्यवस्था अवश्य है। कवि मन की किसी एक भावना को व्यक्त करने का प्रयत्न कर रहा है। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मन अभी एक बात सोचता है, पल भर के उपरान्त ही दूसरी, फिर तीसरी और इन तीनों बातों का एक दूसरी से दूर का भी संबंध नहीं होता, सिवाय इसके कि ये बातें एक ही व्यक्ति के मानस में उठ रही हैं। उदाहरण के लिए मैं यह सोचूँ कि इरा जी को पत्र लिखे मुझे आज दस दिन हो गए, परन्तु न जाने क्यों उनका कोई उत्तर नहीं आया, फिर यह कि कल शाम उस भिखारिन ने गोद के बच्चे को

रुलाने के लिए नोंच दिया और साथ ही यह कि धोबी अभी मेरे कपड़े नहीं लाया। कभी-कभी मन में भावनाएँ और विचार और भी तीव्रता से उमड़ते हैं। यदि उन्हें ज्यों का त्यो व्यक्त कर दिया जाय तो पाठक जो अब तक इस प्रकार की विचार-प्रक्रिया का अभ्यस्त नहीं रहा, थोड़ा चौंकता है। ऐसी रचनाएँ भी आजकल हो ही रही हैं। इन रचनाओं के पीछे स्पष्ट दिखाई देने वाली व्यवस्था चाहे न हो, पर वे किसी मनोवैज्ञानिक सत्य से भी रहित हैं, ऐसा नही कहा जा सकता।

एक तीसरा परिवर्तन लक्षित हो रहा है बँधी-पिटी भावनाओं में। प्रेम के संबंध में कुछ बातें निश्चित सी हैं जैसे जीवन में प्रेम एक व्यक्ति से हो सकता है, एक बार ही हो सकता है या यह वह आग है 'जो लगाये न लगे और बुझाए न बने' आदि। इन भावनाओं के विरुद्ध अब विद्रोह होने लगा है। इसी प्रकार प्रकृति-वर्णन में रम्य और भयंकर का पृथक-पृथक वर्णन तो होता था, आगे चलकर उपेक्षित वस्तुएं भी समेट ली गईं; पर इधर रम्य और कुरूप या संगत और असंगत का मेल भी होने लगा है। इसी प्रकार जो रूढ़ियाँ चली आती हैं उन पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगे हैं। पाठक को यह सब कुछ विलक्षण सा अवश्य प्रतीत होगा और कभी-कभी उसकी कोमल चेतना को आघात भी लगेगा, पर अनुभूति को ईमानदारी से व्यक्त करने और उसे वैज्ञानिक तथा यथार्थवादी बनाने के प्रयत्न में ऐसा होना बहुत संभव है। यह दूसरी बात है कि पाठक को किसी पद्यकार की अभिव्यक्ति विलक्षण, सस्ती, भोंडी या भावुकतारहित प्रतीत हो। एक उदाहरण लीजिए—

चाँद की बारात है तारों का जनाज़ा
याद की मलाई उभरी है तरोताज़ा,
रेंक रहा बाजा—"रे आजा मोरे राजा।
चाँदनी का गौर गात,
ऐ चकोर! मार लात।

—प्रभाकर माचवे

इधर विहार में प्रयोग को वाद के रूप में स्वीकार करने वाले तीन कवि नलिनविलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश अपनी खजड़ी अलग ही बजा रहे हैं। ये लोग प्रयोग को साधन न मानकर साध्य मानते हैं। अपने नाम को अमर करने की लालसा में प्रचलित वाद का नाम भी इन्होंने बदल दिया है। श्री केसरीकुमार का कहना है—

"हिन्दी कविता में प्रयोगवाद का वास्तविक आरम्भ १६३६-३८ ई० में लिखी गई नलिनविलोचन शर्मा की कविताओं से होता है। प्रगति या प्रयोग शब्द के प्रति मोह की आवृत्ति न हो और नए काव्य के सम्पूर्ण दायित्व को स्वीकार किया जाय इसलिए इन कवियों ने अपने वाद के लिए 'प्रपद्यवाद' का और नाम सकेत के लिए 'न के न'[1] का अभिधेय स्वीकार किया और इस प्रकार हिन्दी कविता की वह धारा आगे बढ़ी जो निःसंकोच होकर प्रयोग को ही अपना साध्य मानती है।"

इन लोगों के और भी बहुत से विलक्षण दावे हैं जैसे प्रपद्यवाद महान् पूर्ववर्तियों की परिपाटियों को भी निष्प्राण मानता है। कविता में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छद का वह स्वय निर्माता है। इसी प्रकार कविता एक ओर भावों विचारों अथवा दर्शनों से, दूसरी ओर छंदों, पिंगल, अलकार आदि से नहीं लिखी जाती, वह शब्दों से लिख जाती हैं...... आदि। नवीनता की इसी झोंक में नलिनविलोचन ने, 'क्षितिज की गंजी चाँद' और केसरीकुमार ने 'दिन का सूझा' की कल्पना की है। इस आंदोलन का नई कविता पर कोई शुभ प्रभाव नहीं पडा है। यह प्रभाव बहुत सीमित भी है। अधिकतर ये तीनों ही अपनी और एक दूसरे की कविता की प्रशंसा और व्याख्या करते रहे है। बहुत सम्भव है भविष्य में इनकी कविता का कोई गम्भीर आशय प्रकट हो, क्योंकि भवभूति यह आशा

---

[1] 'नकेन' में इन कवियों ने अपने नाम के प्रथम अक्षर ले लिए हैं और इस प्रकार नलिनविलोचन, केसरीकुमार और नरेश मिलकर 'नकेनवादी' कहलाते हैं।

बँधा गए हैं कि काल अनंत है और पृथ्वी विपुल—किसी न किसी दिन प्रपद्यवाद के प्रवर्त्तकों का भी कोई समानधर्मा उत्पन्न होगा ही।

तीनों की रचनाओं से कुछ पंक्तियाँ लीजिए—

१. प्रत्यूष

प्रत्यूष की नीली, धब्बों भरी शांति—
क्षितिज की गंजी चाँद।

नलिनविलोचन शर्मा

२. आषाढ़स्य प्रथम दिवसे

घनांध
प्रात (या दिवारात)
वज्रावर्तन
विद्युतालंभ
फिर अंधकार :
रोमिल बिलाव—
आखेटी दाँत में जिराके
है पकड़ गया
दिन के मूसे का अग्रभाग—
.. ..
क्षितिज की
रेत पर रक्ताभ छींटे
हो चले विवर्ण काले—
मूसा मर गया शायद!

—केसरीकुमार

३. वेदना-निग्रह

ले लो, वह बेच रहा
वेदना-निग्रह-रस,
जो 'सरे बलम' की संग्रहणी को

करता छू मंतर।
—आह ! वेदना मिली विदाई
जब तुम चले—'अ' दम हौआ बन
'इ ड न' कुञ्ज से .....
शल्य-चिकित्सा का युग है यह
क्यों न अपनी 'लै क्राइ-मल' ग्रन्थि
निकलवा लो ?
ये दो लवणीय 'एच ओ ई' के 'कम्पेडियस' और
'पोर्टेबुल' उदधि भी
सूखे रहा करेंगे !—

—नरेश

इस प्रकार एक ओर नलिनविलोचन शर्मा के नेतृत्व में तीन 'नकेनवादी' हैं जो प्रयोग को साध्य मानते हैं, दूसरी ओर अज्ञेय के नेतृत्व में अनेक प्रयोगवादी हैं जो उसे केवल साधन समझते हैं।

हिन्दी में कुछ ऐसे समीक्षक भी हैं जो प्रयोगवाद को काव्य के कला पक्ष तक ही सीमित रखते हैं। यह दृष्टिकोण एकांगी है। यों काव्य का भाव पक्ष उसके कला-पक्ष को स्वभावतः प्रभावित करता है। पर इस युग में कला सम्बन्धी बहुत से प्रयोग जानबूझकर भी हुए हैं। गीति-शैली के स्थान पर मुक्त छंद का बढ़ता प्रयोग इसका एक उदाहरण है। छंदों में उर्दू गजलों और रुबाइयों के, अँगरेजी में सोनेट और ओड के प्रयोग हुए हैं। भाषा सामान्यतः सरल हो गई है। नए प्रतीक, नए उपमानों, नए काव्य कौशल का प्रयोग बढ़ रहा है। लेकिन केवल ये बाहरी लक्षण ही किसी रचना को प्रयोगवादी नहीं बना देते। यों केशवदास ने नये छंद गढ़े, भारतेन्दु ने बङ्गला छंदों का प्रयोग किया, निराला ने गजलें लिखीं, पंत ने एक दिन घोषणा की कि उनकी वाणी को अब अलंकृत होने की आवश्यकता नहीं और सोहनलाल द्विवेदी ने मुक्त छंद में रचना की। इससे ये लोग प्रयोगवादी नहीं बन जाते। इन्हें प्रयोगवादी मानना उतना ही सार्थक या निरर्थक होगा

जितना कबीर और तुलसी को प्रगतिवादी मानना। जिस कवि को जिस वाद की चेतना ही नहीं है, उसे उस वाद के अन्तर्गत रखना कवि और काव्य दोनो के साथ अन्याय करना है। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि नए कवियों ने जो प्रयोग किए हैं वे सचेष्ट भाव से नहीं किए। तार-सप्तकों के कई कवियों के वक्तव्यो में यह बात पकड़कर दिखलाई जा सकती है कि एक नए युग के संदेश-वाहक होने की चेतना उन्हें है और कविता को नई दिशा की ओर मोड़ने के लिए वे नये प्रयोग करने के लिए आकुल हैं। इन कवियों मे कला-संबंधी नूतन प्रयोगो मे अनुराग प्रदर्शित करने वाले एक तो गिरिजाकुमार माथुर ही हैं। इनके रूप-विधान-सम्बन्धी प्रयोग सचेष्ट भाव से ही होते है, यहाँ तक कि कभी कभी वे प्राणहीन और फीके भी लगने लगते है। उदाहरण के लिए एक स्थान पर इन्हें पूर्णिमा का चाँद गोल आर्ट पेपर जैसा दिखाई दिया है। भवानीप्रसाद मिश्र के मोनोलोग की चर्चा हम आगे करने जा रहे हैं। धर्मवीर भारती के कुछ प्रयोग भी इस बात का स्पष्ट आभास देते हैं कि वे सहज भाव से नही आए, प्रयत्न उनके पीछे छिपा हुआ है। यह दूसरी बात है कि उस प्रयत्न ने कला का रूप धारण कर लिया है। उदाहरण के लिए इस रचना को देखिए जिसमें दूसरी पंक्ति कहीं। (र से न आकर पहली पंक्ति से ही टूट कर जन्म ग्रहण करती है—

तो क्या है यह जिंदगी न जिसमें मिलता कोई छुटकारा ?
(प्रतिध्वनि) ... ... कारा...कारा।
कारा में आखिर कभी शांति मिलती है बरबस क्षण भर को !
(प्रतिध्वनि) ... बस क्षण भर को।
बस क्षण भर को।
क्या कभी जिंदगी में पल भर भी राहत पाना मुमकिन है ?
(प्रतिध्वनि) ... ... ना मुमकिन है
ना मुमकिन है।

इसी प्रकार छंद-संवाद, कविता में पत्र आदि इनके अन्य प्रयोग

है। यह नहीं है कि अज्ञेय, गिरिजाकुमार, भवानीप्रसाद एव भारती आदि के सभी प्रयोग सफल हों, फिर भी यह कहने को मन करता है कि नकेनवादियों की तुलना में ये प्रयोग अधिक स्पष्ट, ग्राह्य और मधुर हैं।

इस प्रकार जिस काव्य में भाव और कला सम्बन्धी प्रयोग सचेष्ट भाव से किये जायँ उसे प्रयोगवादी काव्य कहते हैं। इसकी वास्तविक देन क्या होगी, यह अभी निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। इतना मान लेने में फिर भी किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि एक ओर छायावादी काव्य के विरोध में यह काव्य खड़ा हुआ है, दूसरी ओर प्रगतिवादी काव्य के विरोध में। प्रगतिवादी काव्य जहाँ जनवादी और समाजपरक है, वहाँ यह व्यक्तिवादी और व्यक्तिपरक। इतना होने पर भी प्रयोगवादी असामाजिक प्राणी है, ऐसा उसका बड़े से बड़ा विरोधी नहीं कह सकता। पर सामाजिकता का ग्रहण वह उस रूप में कभी नहीं कर सकेगा, जिस रूप में साम्यवादी कवि करता है। छायावाद ने एक दिन रीतिकालीन बाह्य वर्णनों को हटाकर आंतरिक सूक्ष्मता की प्रतिष्ठा की थी। उससे उकताकर प्रगतिवाद ने ठोस जीवन की स्थूलता सामने रखी। इतने में प्रयोगवाद आया और उसने फिर भावनाओं की सूक्ष्मता को जन्म दिया। छायावादी काव्य का विरोध करने मे प्रयोगवाद ने यहाँ तक तो प्रगतिवाद का साथ दिया कि वह उसके अलौकिक पक्ष, कल्पना वैभव, कोमल प्रांजल मधुर शब्दावली एवं संस्कृत गर्भित समास शैली को स्वीकार नही करता, पर सूक्ष्मता की ओर झुकने में यह छायावाद का ही छोटा भाई है। यह दूसरी बात है कि दोनों स्थानों पर यह सूक्ष्मता भिन्न कोटि की है। जहाँ तक प्रगतिवाद की तुलना में प्रयोगवाद की शक्ति की बात उठती है, वहाँ एक कमी अभी खटकती है और वह यह कि जैसे प्रगतिवाद के पास अपना एक जीवन-दर्शन है वैसे प्रयोगवाद के पास नहीं। आशा की जा सकती है कि जैसे प्रयोगवाद ने हमें नए शब्द, नए रूप, नए स्वर, नए छंद, नया संगीत, नई कल्पनाएँ, नए विचार, नए भाव और नए स्वप्न दिए हैं, वैसे ही भविष्य में वह हमें नया जीवन-दर्शन भी देने में समर्थ होगा।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय

अज्ञेय के पाँच कविता-संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं—

(१) भग्नदूत (२) चिंता (३) इत्यलम् (४) हरी घास पर क्षण भर और (५) बावरा अहेरी।

प्रारम्भ से ही अज्ञेय की कविता का विषय सीमित नहीं रहा। 'भग्नदूत' में ही जो उनका पहला कविता-संग्रह है ईश्वर, प्रेम और प्रकृति के अतिरिक्त बहुत-से सामान्य विषयों जैसे दीप, घट, माँझी, सैनिक आदि पर भी उन्होने लिखा है। प्रकृति के सौंदर्य को देखकर कभी-कभी एक प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूति उनके हृदय में जगती है। कृतज्ञता से भरकर वह उस महान को उपहार स्वरूप कुछ भेंट करना चाहते है, लेकिन देखते हैं कि कविता, चित्र, संगीत सब उनकी भावना को ठीक से व्यक्त नहीं कर पाते; अतः अंत में उससे एकाकार होने की भावना को ही श्रेष्ठतम आत्माभिव्यक्ति मानकर संतोष किया गया है। यह हुई आत्म-समर्पण की कोमलतम भावना। पर इसी ईश्वर के प्रति विद्रोह की निठुर कल्पना भी उनमें पाई जाती है। आत्म-समर्पण में व्यक्तित्व की यह स्वतंत्रता अथवा प्यार में विद्रोह की यह वृत्ति अज्ञेय के काव्य की अपनी विशेषता है।

प्रेम के क्षेत्र में हृदय की कोमलता, भावनाओं की गहराई, चिंतन की सूक्ष्मता और मनोवैज्ञानिक जटिलता सब थोड़ी बहुत पाई जाती हैं। प्रेम मे कवि की पूरी आस्था है। वह समझता है कि जीवन के संघर्ष में पराजित व्यक्ति को यदि कहीं सान्त्वना मिल सकती है तो प्रणय के वक्ष में ही। प्रेमी के लिए यों अपनी भावना को समझाना कठिन है। उसका आभास तो प्रेम-पात्र अपनी दशा से ही लगा सकता है। प्रेम में व्याघात उत्पन्न होना भी बहुत स्वाभाविक है; अतः प्रणयी

को अपनी वेदना को लेकर कोरा हाहाकर नहीं करना है, जीवन के व्यापक दुःख में उसे डुबा देना है है।

प्रकृति का प्रयोग अधिकतर भावनाओं को रंजित करने के लिए हुआ है।

स्वतंत्र वस्तुओं पर जो रचनाए हैं उनमें कवि ने छोटी से छोटी वस्तु की आत्मा में प्रवेश करने का प्रयत्न किया है। व्यक्ति से भिन्न यहाँ वस्तु को प्रधानता मिली है। यह दृष्टि मौलिक और आकर्षक दोनों है जिससे पाठक का अन्तर हल्का उद्वेलित होने के साथ रसानुभूति का अनुभव भी करता रहता है। माँझी के गीतों में कर्म की कठोरता को भावना से कोमल बनाए रखने का संकेत बराबर पाया जाता है।

(१)

क्या दूँ देव! तुम्हारी इस विपुला विभुता को मैं उपहार?
मैं, जो क्षुद्रों में भी क्षुद्र, तुम्हें जो प्रभुता के आगार!
अपनी कविता? भव की छोटी घटनाएँ जिसका आधार,
कैसे उसकी परिमा में भर दूँ घहराता पारावार?
अपने निर्मित चित्र? वही जो असफलता के शव पर स्तूप,
तेरे कल्पित छाया-अभिनय की छाया के भी प्रतिरूप!
अपनी जर्जर वीणा के उलझे से तारों का संगीत?
जिसमें प्रतिदिन क्षणभङ्गुर लय-बुदबुद होते रहें प्रमीत!

(२)

आँसू से भरने पर आँखें
और चमकने लगती हैं।
सुरभित हो उठता समीर
जब कलियां झड़ने लगती हैं।
बढ़ जाता है सीमाओं से
जब तेरा यह मादक हास,

समझ तुरत जाता हूँ मैं
अब आया समय विदा का पास।

(३)

एक तीक्ष्ण अपांग से कविता उत्पन्न हो जाती है,
एक चुम्बन में प्रणय फलीभूत हो जाता है।
पर मैं अखिल विश्व का प्रेम खोजता फिरता हूँ,
क्योंकि मैं उसके असंख्य हृदयों का गाथाकार हूँ।

'भग्नदूत' की रचनाओं में जैसा स्वाभाविक है, भाव ही की प्रधानता है, कला या टेकनीक की नहीं। टेकनीक एक प्रकार से दुर्बल और खंडित है। कई स्थानों पर छंद-भंग हैं। तुकें साधारण हैं। इस ग्रथ की पहली पंक्ति ही—दृष्टिपथ से तुम जाते हो जब—कविता की पंक्ति नहीं है। अंतिम रचना 'कवि' जिसका उदाहरण ऊपर दिया गया, गद्य-गीत है, कविता नहीं। आखिर कोई चीज ऐसी अवश्य रहेगी जो गद्य और पद्य का अंतर निर्धारित करती रहे। या तो छंद को स्वीकार ही नहीं करना चाहिए, स्वीकार किया है तो उसके नियमों के अनुशासन में रहना चाहिए। इन रचनाओं में जहाँ भाव की रक्षा के लिए मात्राएँ घटा-बढ़ा दी गई हैं, वहाँ तो आक्षेप की बात नहीं उठती, पर कहीं-कहीं पंक्ति का ढलाव रचनाकार की असमर्थता प्रकट करता है। निम्नलिखित उद्धरणों को ही देखिए—

(१) नहीं किसी के हृदय पटल पर
खिंची कृतज्ञता की रेखा।

(२) कर कलुषित हैं अंतर्दाह धुएं से।
चाहते ही हम रह जाएंगे, नहीं कभी पाएंगे।

इस संग्रह की 'असीम प्रणय की तृष्णा' रचना पर जिसकी कुछ

पक्तियाँ हम पीछे उद्धृत कर आए हैं, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'बलाका' ग्रंथ की 'दान'[1] शीर्षक कविता का प्रभाव पाया जाता है।

'चिंता' का विषय है प्रेम। इसमें अपनी भावनाओं को कविता और गद्य-गीत दोनो के माध्यम से कवि ने व्यक्त किया है। इसके दो भाग —विश्वप्रिया और एकायन। विश्वप्रिया में प्रेमी और एकायन में प्रेमिका का आत्म-निवेदन है। यद्यपि भूमिका में अज्ञेय जी ने इसे चिरंतन पुरुष और चिरंतन स्त्री के संबध की अभिव्यक्ति माना है, पर हमें, जैसा इसके समर्पण से भी स्पष्ट है, यह व्यक्तिगत प्रेम की ही अभिव्यक्ति प्रतीत होती है। व्यक्तिगत होने से अभिव्यक्ति सर्वजनीन नहीं हो सकती, काव्य को ऐसा अभिशाप नहीं मिला है।

नारी के प्रति पहली भावना होती है जिज्ञासा की—यही कि नारी क्या है? उसकी निकटता प्राप्त होने पर आकर्षण का जन्म होता है और फिर धीरे-धीरे कामना जगती है। यह संबंध बढ़ता है; पर जैसा पुरुष चाहता है, वैसा सदैव नहीं हो पाता; अतः भाव-विकास में गतिरोध भी उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि पुरुष अपने को आहत समझकर झुँझलाहट का अनुभव करे और वाणी के संयम को खो दे—

तोड़ दूँगा मैं तुम्हारा आज यह अभिमान!
तुम हँसो, कह दो कि अब उत्संग वर्जित है—
छोड़ दूँ कैसे भला मैं जो अभीप्सित है?
कोषवत् सिमटी रहे यह चाहती नारी—
खोल देने, लूटने का पुरुष अधिकारी!
बद्ध है मम कामना में क्षणिक तेरा हास,
मेघ उर में ही बुझेगा दामिनी का लास!

---

[1] हे प्रिय, आजि ए प्राते
निज हाते
की तोमारे दिब दान।

दूर रहने की हृदय में ठानती क्या हो ?
तुम पुरुष की वासना को जानती क्या हो !
मत हँसो नारी मुझे अपना वशीकृत जान—
तोड़ दूँगा मैं तुम्हारा आज यह अभिमान !

इसके उपरांत प्रारंभ होता है भावना का उतार। दोनों दूर हो जाते हैं। एक दिन ऐसा भी आता है कि इसी नारी से सामने होने पर कवि पाता है कि उसके प्रति सारा भाव निश्शेष हो गया है। उसके लिए वह फिर साधारण हो गई है।

पर यदि प्रेम का संबंध इतना ही सरल होता कि प्रेम करके सब लोग भुला दिया करते तो व्यक्ति के जीवन में फिर कोई उलझन ही न खड़ी होती। यहाँ भी प्रेम की स्मृति जब उभरती है तो बहुत पीड़ा देती है और इस बंधन से मुक्ति का मार्ग इसलिए नहीं दिखाई देता कि पुरुष पाता है कि वास्तव में अब तक वह किसी और को नहीं, अपने को ही प्यार करता रहा है और जीवन में व्यक्ति किसी से घृणा कर सके, अपने से घृणा नहीं कर सकता; किसी से दूर भाग जाय, अपने से दूर भाग कर नहीं जा सकता।

किया था किसका मैंने चुंबन ?
तेरा या तेरे कपोल का
या उस पर आँसू अमोल का
या जो उस आँसू के पीछे छिपी हुई थी विरह जलन ?
या कि—आज सच ही सच कह दूँ,
अपना संशय सम्मुख रख दूँ !—
तेरे मृदु कपोल पर ढलके
विरह-जलन के आँसू छलके—
तेरी विरह-जलन के पीछे सोई थी जो मेरी छाया,
आड़ उसी की लेकर मैंने अपना-आप भुलाया ?

अपने से अपना था प्रणय-मिलन—
किया था किसका मैंने चुंबन ?

'एकायन' में नारी की स्थिति कुछ भिन्न है। यद्यपि एक स्थान पर नारी के स्वतत्र अस्तित्व की घोषणा करते हुए यह भी कहा गया है कि दोनों के बीच का वास्तविक सबंध मित्रता का ही हो सकता है; पर अधिकतर उक्तिया श्रद्धा-भावना से समन्वित हैं। पुरुष है देवता, नारी है पुजारिन। पुरुष नारी की प्रेरणा है। यह माना गया है कि नारी पर पुरुष का सहज अधिकार है और क्रूरता करने पर भी नारी का कुछ ऐसा स्वभाव है कि वह उसे घृणा नही कर सकती। एकायन की झंझट वास्तव में यह है कि नारी के लिए सोचने वाला भी पुरुप ही है। यद्यपि विश्वप्रिया से इन रचनाओं में अधिक कोमलता पाई जाती है और अनुभूति भी कुछ भिन्न प्रकार की है, फिर भी नारी की सी अनुभूति दूसरी बात है, शत-प्रतिशत नारी की अनुभूति कुछ और ही बात। विचार-पक्ष को छोड़कर जहाँ केवल भावना का संबंध है, वहाँ उक्तियाँ बड़ी मार्मिक बन पड़ी हैं, विशेष रूप से बिदा और विरह-काल की।

(१)

पुजारिन कैसी हूँ मैं नाथ ?
झुका जाता लज्जा से माथ !
छिपे आई हूँ मंदिर-द्वार
छिपे ही भीतर किया प्रवेश;
किंतु कैसे लूं बदन निहार—
छिपे कैसे हो पूजा शेष।
दया से आँख मूंद लो देव !
नहीं मांगूंगी मैं वरदान,
तुम्हें अनदेखे देकर भेंट—
तिमिर में हूँगी अंतर्धान !

लिए फूल, तारा, धूलिकण, दीप, विद्युत् आदि को हम ले सकते हैं। इनके प्रयोग से एक प्रकार की सांकेतिकता रचना में आती ही है कि कवि उस प्रतीक का अर्थ खोल देता है और इस प्रकार संकेत से उत्पन्न प्रभाव नष्ट हो जाता है।

'इत्यलम्' चार अंशों में विभाजित है—(१) बंदी स्वप्न (२) हिय-हारिल (३) वंचना के दुर्ग और (४) मिट्टी की ईहा।

'बंदी स्वप्न' में बंदी जीवन से संबंधित रचनाएँ पाई जाती हैं। हिंदी के कई कवियों को जिनमें सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह सुमन आदि मुख्य हैं, जेल जीवन का अच्छा अनुभव है। इस जीवन ने हिंदी को बहुत सी श्रेष्ठ रचनाएँ दी हैं। इस जीवन के प्रति प्रत्येक कवि की प्रतिक्रिया भिन्न प्रकार की है; इसी से रचनाओं की आत्मा भी भिन्न प्रकार की हो गई है। अज्ञेय जी बंदी बनाने वाले की सत्ता को स्वीकार करने पर भी उससे आतंकित नहीं होते। उनकी दृष्टि से शरीर को ही बंदी बनाया जा सकता है आत्मा को नहीं। अत्याचार आत्मा को कुचलने में सदैव असमर्थ रहा है। ऐसी रचनाओं में यही नहीं कि कवि प्रति-द्वन्द्वी को ललकारता हो, वह सभी प्रकार के सत्ताधारियों, संकीर्णता-वादियों और स्वार्थियों के प्रति घृणा और आक्रोश का प्रदर्शन करता हुआ यह विश्वास प्रकट करता है कि ऐसे लोगों की सत्ता क्योंकि अन्याय और शोषण पर आधारित है, अतः शीघ्र ही नष्ट होगी। विरोधी और निराशा-पूर्ण वातावरण में भी अदम्य उत्साह और उज्जवल आशा से पूर्ण ये रचनाएँ अपना पृथक महत्व रखती हैं।

अज्ञेय जी व्यक्ति की इस स्वाधीनता-भावना को व्यक्त ही नहीं करते, उसे जन-जीवन में भरना भी चाहते हैं। इत्यलम् में कई रचनाएँ ऐसी हैं जिनमें इस स्वाधीनता-भावना को वे देश-व्यापी धरातल पर फैलाने में समर्थ हुए हैं। आश्चर्य की बात है कि आज तक किसी आलोचक या इतिहासकार ने उनकी गणना राष्ट्रीय कवियों में नहीं की।

मधुशाला पर बहुत-सी रंगीन कविताएँ आज तक लिखी गई हैं। 'बंदी स्वप्न' में ऐसी ही एक रचना अज्ञेय जी की भी है। कवि की इच्छा है कि मधु से उसका केवल कंठ ही तृप्त न हो, मधुबाला के दर्शन से उसके नेत्र भी सफल हों। पर अवगंठन हटते ही जब वह उस मुख को देखता है तो उसे बड़ा आघात लगता है। देखता है कि उसकी मधुबाला तो विधवा है। उसका सिर लज्जा से उस समय और भी गड़ जाता है जब वह पाता है कि यह रक्तस्नान साकी उसकी दुखिया भारतमाता है! इस प्रकार देश की वास्तविक दशा और उसके नवयुवकों के स्वप्नमय जीवन को प्रत्यक्ष करने के लिए कल्पना की रम्यता के भीतर से कवि जो गहरा आघात पाठकों के हृदय को देता है, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता।

कवि ने यहाँ अपने को अधिकतर ऐसे उद्धत विद्रोही के रूप में प्रस्तुत किया है जिसकी गति अप्रतिहत है। पर विद्रोह, राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की इसी चेतना को घेरे एक प्रकार की आंतरिक कोमलता भी है जो इस बन्दी जीवन में किसी दूरवासी मीत के लिए विकल रहती है। जैसा पहले ही कह चुके हैं अज्ञेय का कवि-व्यक्तित्व शिला-सी कठोरता और नवनीत-सी कोमलता से निर्मित है। उनके विद्रोही स्वभाव के भीतर से कोमलता की यह चेतना वैसे ही फूटकर प्रवाहित होती रहती है जैसे पर्वत के अंतर से निर्झर की कोमल धारा।

'बन्दी स्वप्न' में ईश्वर को भी कवि ने कहीं-कहीं स्मरण किया है। सामान्यतः अब उसे ईस्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं है; पर यदि वह कहीं हो तो वह उससे कुछ चाहता नहीं। अपनी ज्योति उसमें मिटाने का वह अभिलाषी नहीं है। उस ज्योति को बनाए रखकर ही वह उस ज्योतिर्मय के पास जाना चाहता है।

(१)

सुनो तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान!

तुम, जो बड़े बड़े गद्दों पर ऊँची दूकानों में,

उन्हें कोसते हो जो भूखे मरते हैं खानों में,
तुम, जो रक्त चूस ठठरी को देते हो जल दान—
सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूं, सुनो घृणा का गान !
तुम, जो मन्दिर में वेदी पर डाल रहे हो फूल,
और इधर कहते जाते हो, 'जीवन क्या है ? धूल !'
तुम जिसकी लोलुपता ने ही धूल किया उद्यान—
सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूं, सुनो घृणा का गान !
तुम, सत्ताधारी, मानवता के शव पर आसीन,
जीवन के चिर रिपु विकास के प्रतिद्वन्द्वी प्राचीन,
तुम, श्मशान के देव ! सुनो यह रणभेरी की तान—
आज तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान !

(२)

कर से कर तक, उर से उर तक, बढ़ता जाओ ज्योति हमारी,
छप्पर तल से महल-शिखर तक चढ़ती जाओ ज्योति हमारी,
दैतिम्न कोटि शिखाएँ जलकर कोना-कोना दीपित कर दें—
एक भव्य दीपक-सा भारत जगती को आलोकित कर दे !

(३)

मैंने कहा, कंठ सूखा है
दे दे मुझे सुरा का प्याला ।
मैं भी पीकर आज देख लूं
यह तेरी अंगूरी हाला ।'
मैंने देखा, केवल अपने
रूखे केशों से अवगुंठित
वहाँ करोड़ों मधु बालाएँ
खड़ी विवसना और अकुण्ठित
द्राक्षा के कुचले गुच्छे सी
मर्माहत वे झुकी हुई थीं —

और रक्त उनके हृदयों का
होता एक कुन्ड में संचित !
तड़प उठा मैं, चीख उठा, अब
मेरा हा ! निस्तार कहाँ है ?
रक्तस्नात वह मेरा साक्षी
मेरी दुखिया भारत माँ है !

(५

दूरवासी मीत मेरे
पहुँच क्या तुझ तक सकेंगे
कांपते ये गीत मेरे ?

'हिय हारिल' अंश में अपने, जीवन का आदर्श कवि ने हारिल पक्षी को माना है। प्रारंभ में अपनी चेतना की स्वतंत्रता को वाणी देने के लिए गगन के वक्ष को चीरकर उड़ने वाले एकाकी कीर को भी एक प्रतीक के रूप में उसने स्वीकार किया है।

प्रेम की अभिव्यक्ति स्मृति के रूप में अधिकतर हुई है; अतः कवि आवेश से दूर होकर व्यथा की महत्ता को स्वीकार करता है और समझ पाता है कि विरह भी मिलन के समान ही जीवन की स्वाभाविकता है। इस व्यथा ने उसकी अनुभूति को तीव्रतर और कोमलतर बना दिया है और कहीं-कहीं तो प्रेम की भावना श्रद्धा की कोटि को पहुँचती दिखाई देती है। अपने हृदय और व्यापक विश्व दोनों में अपनी प्रिया को उपलब्ध करता हुआ प्रणय में अद्वैत-भाव की उपलब्धि वह कभी-कभी करता है। बाह्य दृश्यों में दो वर्णन बड़े मार्मिक बन पड़े हैं। पहला है कपोत-कपोती के एक जोड़े का। उन्हें स्वच्छंद विहार करते देख उसका हृदय प्रसन्नता से भर जाता है और वह कामना करता है कि इनके इस स्वच्छंद विहार में कभी विघ्न न पड़े। इस नैसर्गिक प्रणय के सामने मानव-जग का प्रणय उसे फीका प्रतीत होता है। दूसरे, वह दृश्य भी देखने योग्य है जब अपनी प्रेयसी के साथ कंधे से कंधे भिड़ाकर वह ताजमहल के सामने खड़ा है और

इस निर्णय पर पहुँचता है कि उस स्थिति में अनुभूति की जो लीनता और एकाकारिता उन दोनों को प्राप्त हुई है उससे सुंदर स्मारक प्रेम का और हो ही नहीं सकता ।

प्रकृति में संध्या, वर्षा और पर्वत-प्रदेश के वातावरण का चित्रण है ।

विचार-पक्ष अब अधिक स्पष्ट हो चला है । कवि की दृष्टि से निरपेक्ष कुछ नहीं । बुद्धि पर उसका बड़ा भारी विश्वास है । लेकिन वह देखता है कि नियति के सामने व्यक्ति की बुद्धि भी पराजित हो जाती है । सब परिवर्तनशील है । यहाँ व्यक्ति को प्रायः ग़लत समझा जाता है; अतः उसकी एकमात्र धरोहर है यातना । इस यातना को कवि ने कहीं-कहीं अपना आदर्श ही स्वीकार कर लिया है ।

(१)

सोचा था, जग के सम्मुख आदर्श नया हम लाते हैं—
नहीं जानता था कि प्यार में जग ही को दुहराते हैं ।
जग है, हम हैं, होंगे भी, पर बना रहा कब किसका प्यार ?
केवल इस उलझन के बंधन में बँध भर हम जाते हैं ।

(२)

मुझे देखकर नयन तुम्हारे
मानों किंचित् खिल जाते हैं,
मौन अनुग्रह से भरकर वे
अधर तनिक से हिल जाते हैं,
तुम हो बहुत दूर, मेरा तन
अपने काम लगा रहता है—
फिर भी सहसा अनजाने में
मन दोनों के मिल जाते हैं !

(३)

बुद्धि ही इस मोहतम में
ज्योति अंतिम है हमारी—

किंतु क्या उसकी परिधि में
नियति को हम बाँध पाते !

(४)

बैठो, रहो, पुकारो-गाओ
मेरा वैसा धर्म नहीं है;
मैं हारिल हूँ, बैठे रहना
मेरे कुल का कर्म नहीं है।
तुम प्रिय की अनुकंपा माँगो,
मैं माँगूं अपना समकक्षी,
साथ साथ उड़ सकने वाला
एकमात्र वह कंचन पक्षी।

'वंचना के दुर्ग' में प्रकृति संबंधी रचनाएं अधिक हैं। प्रकृति में कवि ने कहीं पक्षियों की निर्द्वन्द्व क्रीड़ा के दर्शन किए हैं, कहीं प्रणय के संकेत ढूँढे हैं और कहीं वर्षा में जैसे पृथ्वी के उरोजों पर झुके इंद्र के वक्ष वाले उदाहरण में वासना के बीज बो दिए हैं। यह सब तो हुआ है; पर इधर अज्ञेय जी में एक नयी प्रवृत्ति भी जगी है और वह यह कि वातावरण का चित्रण करते-करते रम्य वस्तुओं के साथ भद्दी और असंगत वस्तुओं को आँखों के सामने ले आते हैं। परंपराविहित न होने के कारण ऐसे वर्णन हमारी चेतना को झकझोर जाते हैं। फिर भी हिन्दी में इन वर्णनों की मौलिकता तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी। एक स्थान पर मस्जिद से उठी मुल्ला की बांग के साथ पिल्ले की रिरियाहट भी सुना दी है। एक दूसरे स्थान पर शिशिर की चाँदनी में गधा खड़ा कर दिया है। दोनों वर्णनों के विशिष्ट अंश देखिए—

(१)

दूर किसी मीनार क्रोड़ से मुल्ला का
एक-रूप पर अनेक भावोद्दीपक
गंभीर आऽह्वाऽन —

'अस्सला तु खैरुम्मिनन्नौम'
निकट गली में
किसी निष्करुण जन से बिन कारण पदाक्रांत
पिल्ले की करुण रिरियाहट—

(२)

वंचना है चाँदनी सित
झूठ वह आकाश की निरवधि गहन विस्तार—
शिशिर की राका-निशा की शांति है निस्सार !
निकटतर—धँसती हुई छत, आड़ में निर्वेद
मूत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टाँगों पर खड़ा, नतग्रीव
धैर्य-धन गदहा।

प्यार की रचनाएं इसमें भी साथ-साथ चल रही हैं। प्यार में थोड़ी सी असावधानी हुई नहीं कि अनर्थ उत्पन्न हो जाता है—

निमिष-भर को सो गया था प्यार का प्रहरी—
उस निमिष में कट गई है कठिन तप की शिंजिनी दुहरी—
सत्य का वह सनसनाता तीर जा पहुँचा हृदय के पार—
खोल दो सब वंचना के दुर्ग के ये रुद्ध सिंहद्वार !

'मिट्टी की ईहा' में भावना का वेग बहुत बढ़ गया है। जीवन में अब कवि तृप्ति का अनुभव करने लगा है। प्रकृति में अपनी प्रेमिका के दर्शन करते हुए उसे लगता है जैसे उसके चारों ओर आनंद बरस रहा है।

अमुखर नदियाँ,
धूलभरे शिशु,
खग,
ओस-नमे फूल,
गंध
मिट्टी पर पहले असाढ़ के अयाने वारि-बिंदु की,

कोटरों से झाँकती गिलहरी,
स्तब्ध लय बद्ध भौंरा
टँका सा अधर में,
चाँदनी से बसा हुआ कुहरा,
पीली धूप शारदीय प्रात की,
बाजरे के खेतों को फलाँगती
डार हिरनों की बरसात में—
नत हूँ मैं
सबके समक्ष बार-बार मैं विनीत स्वर
ऋण स्वीकारी हूँ—
विनत हूँ।
मैं मरूँगा सुखी।

इत्यलम् में मात्रिक और मुक्त छंदों का प्रयोग ही अधिकतर हुआ है। जहाँ किसी लोक-गीत की लय का आधार कवि ने लिया है वहाँ स्वतः विलक्षण माधुर्य आ गया है जैसे 'फूल कचनार के प्रतीक मेरे प्यार के' या 'ओ पिया पानी बरसा' में।

भाषा कहीं तो ऐसी संस्कृत गर्भित है जैसे 'दिवसावसान पर कार्यावसान की है तालयुक्त एकरूपता' पर कहीं इतनी सरल भी जैसे—'ठंड पड़ेगी जी को, आसरा मिलेगा ही को।' ब्रजभाषा के बहुत से शब्दों का प्रयोग भी इन रचनाओं मे पाया जाता है जैसे रैन, नैन, लौं, पै, हिय आदि। 'न' के स्थान पर 'मत' का प्रयोग ये कहीं-कहीं करते हैं जैसे 'प्रतिमा खो मत जाय कहीं।' धूलि का धूली उगा का ऊगा भी कभी-कभी लिख जाते हैं। कहीं-कहीं शुद्ध शब्द प्रयोग करने की धुन में छंद-भंग हो जाता है जैसे, 'रुक न यद्यपि उपहास जगत का' में यद्यपि के द्वारा। रवीन्द्र

नाथ का प्रभाव इस ग्रथ में भी कहीं-कहीं लक्षित होता है जैसे 'दिवाकर के प्रति दीप'[1] में।

इत्यलम् के उत्तरार्द्ध में व्यंजना शक्ति बढ़ चली है।

इस काव्य ग्रंथ में दस-बारह ऐसी रचनाएँ भी हैं जो हैं तो गद्य-गीत पर उन्हें कविता के नाम से अज्ञेय जी ने चलाना चाहा है। कहीं-कहीं इन्होंने ऐसा भी किया है कि मुक्त छंद लिखते-लिखते किसी गद्य-गीत का टुकड़ा बीच मे डाल दिया है। उदाहरण के लिए 'तीसरा पक्षी' की ये पंक्तियाँ देखिए—

यद्यपि अंधकार के
जागरूक प्रहरी का दिनारंभ में अचेत होना ही
जीवन की व्रत सम्पूर्ति है
और उष:किरण के स्पर्श पर क्रौंच की एकाकिनी पुकार तो
आगमिष्यत् के लिए आश्वासन की घोषणा
आलोक की प्रशस्ति है;
यद्यपितु
परम रहस्य के संसर्ग के उपरांत
समाधि उन्मेष है।

'हरी घास पर क्षण भर' काव्य ग्रंथ की शक्ति मनोभावो के चित्रण में विशेष रूप से परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिए 'सागर के किनारे' या 'क्षमा की वेला' को हम ले सकते हैं। कभी कवि बहुत ही हल्के मूड में होता है जैसे 'एक ऑटोग्राफ' में; पर कभी इस मूड की गंभीरता इतनी बढ जाती है कि वह गहरे विषाद का छोर छूने लगती है जैसे 'अकेली न जैयो राधे जमुना के तीर' में।

प्रकृति में वर्षा और शरद के वर्णन ही अधिकतर कवि ने किए हैं।

---

[1] 'कणिका' के 'कर्त्तव्य-ग्रहण' में भी ऐसा ही भाव प्रदर्शित किया गया है।

वर्षा तो उद्दीपन के रूप में आई है; पर शरद के कई स्वतंत्र चित्र बड़े मनोहारी है।

प्रेम में यद्यपि अतीत की बहुत-सी प्रणय क्रीड़ाओं और मिलन-स्थलों को स्मरण कर कवि का हृदय सिहर उठता है; पर उसे अब वह एक प्रेरणा के रूप में ग्रहण करने लगा है।

दुःख को यहाँ भी कुछ अधिक महत्व प्रदान किया गया है। कवि के अनुसार दुःख हमारे व्यक्तित्व को निखार कर हमें सकीर्णता से ऊपर उठाता है। यद्यपि अज्ञेय जी ने एक स्थान पर यह भी कहा है कि आज प्रत्येक कलाकार व्यक्तिवादी होने को विवश है, क्योंकि उससे भिन्न उसकी गति नहीं; पर ध्यान से देखें तो इस व्यक्तिवाद का समष्टिवाद से कहीं कोई विरोध नहीं है। उनका व्यक्तिवाद अपना पृथक अस्तित्व रखकर भी सामूहिकता को पुष्ट करने वाला है, क्योंकि उसका लक्ष्य भी लोक कल्याण ही है।

अज्ञेय की कला अब प्रौढ़ हो चली है। बहुत से नए उपमान उन्होंने इन रचनाओं में जुटाए हैं जो भावनाओं को अधिक सूक्ष्मता और स्पष्टता से व्यक्त करते हैं। केवल पुरानी लीक पर चलने से न काव्य समृद्ध होता है और न भाषा। इसी से काव्य और उसकी कला में निरंतर कुछ न कुछ जुड़ता रहता है। अज्ञेय जी ने अपनी प्रेमिका को कहीं लाल बुरूस के उत्फुल्ल गुच्छ, कहीं बिछली घास, कही बाजरे की छरहरी कलगी कहा है। निश्चित रूप से ये उपमान बड़े व्यंजक हैं। इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि अब प्रत्येक कवि अपनी प्रेमिका को बाजरे की कलगी या बिछली घास कहना प्रारंभ कर दे।

मुक्त छद को अज्ञेय से गंभीरता और नई शक्ति मिली है; पर उसका वेग अभी स्वच्छद नहीं। इनका छंद कुछ रुककर, पीछे मुड़कर, तब आगे बढ़ता है। तुकें यद्यपि परंपरावादी नहीं हैं; पर सभी कहीं समान रूप से अच्छी नहीं कही जा सकतीं। इस ओर अज्ञेय जी ने कभी अधिक ध्यान

नहीं दिया, क्योंकि थोड़ी इधर-उधर हटी होने पर भी वे उन्हें स्वीकृत रहती हैं। भावना को भी अभी चिंतन से दबा हुआ ही समझिए।

(१)

अहं ! अंतर्गुहावासी ! स्वरति ! क्या मैं चीन्हता कोई न दूजी राह ?
जानता क्या नहीं निज में बद्ध होकर है नहीं निर्वाह ?
क्षुद्र नलकी में समाता है कहीं बेथाह
मुक्त जीवन की सक्रिय अभिव्यंजना का तेज-दीप्त प्रवाह !
जानता हूँ। नहीं सकुचा हूँ कभी समवाय को देने स्वयं का दान,
विश्व-जन की अर्चना में नहीं बाधक था कभी इस व्यष्टि का अभिमान् !
मुझ सरीखे अमित लोगों से, मुझे यह सर्वदा है ध्यान,
नयी, पक्की, सुगम और प्रशस्त बनती है युगों की राह !

(२)

छिटक रही है चाँदनी
मदमाती, उन्मादिनी,
कलगी मौर सजाव ले
कास हुए हैं बावले,
पकी ज्वार से निकल शशों की जोड़ी गई फलाँगती—
सन्नाटे में बाँक नदी की जगी चमक कर झाँकती !

(३)

तुम्हें मैंने आह ! संख्यातीत रूपों में किया है याद—
सदा प्राणों में कहीं सुनता रहा हूँ तुम्हारा संवाद—
बिना पूछे, सिद्धि कब ? इस इष्ट से होगा कहाँ साक्षात् ?
कौन-सी वह प्रात, जिसमें खिल उठेगी क्लिन्न, सूनी, शिशिर भीगी रात ?
चला हूँ मैं; मुझे संबल रहा केवल बोध पग-पग आ रहा हूँ पास;
रहा आतप-सा यही विश्वास
स्नेह के मृदु घाम से गतिमान रखता निबिड़ मेरे साँस और उसास।
आह, संख्यातीत रूपों में तुम्हें मैंने किया है याद !

'बावरा अहेरी' काव्य ग्रथ का नामकरण संग्रह की एक प्रमुख रचना के आधार पर हुआ है। यहाँ 'अहेरी' शब्द 'आलोक' का प्रतीक है जो बाह्य जगत में प्रकृति के अंधकार और अन्तर्जगत् में मन के तमस को मिटाता है। इस रचना की प्रारम्भिक पंक्तियो पर फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि उमरख़ैयाम की एक रुबाई का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। वहाँ भी प्रभात के आलोक को पूर्व का अहेरी (Hunter of the East) कल्पित किया गया है।

आत्म-निवेदन सम्बन्धी कई रचनाओ में जहाँ रूप के रम्य वर्णन पाए जाते हैं या विदा के मर्मभेदी उच्छ्वास सुनाई पड़ते हैं या मन की गहरी आसक्ति की चर्चा है या फिर किसी को साथी कहकर पुकारा गया है, वहाँ तो स्पष्ट ही भाव का केन्द्र नारी है। पर कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जहाँ प्रेरणा का पात्र अनिर्दिष्ट है। भाव का यह प्रतीक नारी भी हो सकती है और आलोक का तत्व भी।

इनका प्रकृति-वर्णन एक ओर मन में प्रेम के प्रेरक-भाव जगाता है, दूसरी ओर जीवन के प्रति अनुराग। इसीलिए इनके वर्षा शरद और वसंत, चाँदनी अन्धड़ और प्रभात के वर्णन बड़े आह्लादकारी बन पड़े हैं। राष्ट्र पर्व पर अपने हृदय की प्रतिक्रिया अङ्कित कर इन्होंने अपने राष्ट्र-प्रेम का परिचय दिया है। कभी-कभी ये ऐसी वृत्तियों का जो विद्युत् की भाँति पल भर चमककर विलीन हो जाती हैं, अङ्कन बड़ी कुशलता से करते हैं।

इस कृति की विशेषता इनकी निरन्तर व्यापक बनने वाली दृष्टि है। व्यक्तित्व की महत्ता पर बल देते हुए भी सामाजिकता की ओर इनका झुकाव अब कुछ अधिक हो चला है। जीवन, प्रकृति और परम तत्व को अब ये एक सूत्र में गूँथने लगे हैं। यह वृत्ति भी इनके चिंतन के विकास की परिचायिका रहेगी।

इनकी रचनाएँ कुछ सांकेतिक होने के कारण पाठक के मन मे एक प्रकार की वेदना जगाती हुई थोड़ी देर को उसे अनिर्वचनीय आनंद से भर देती हैं। बौद्धिकता की ओर कुछ अधिक झुकाव होने के कारण वे

भाव की सहज अभिव्यक्ति सी उतनी नही लगतीं जितनी कला की खराद पर उतारी हुई। यो छोटी-बड़ी प्रत्येक रचना अपने में पूर्ण एक चित्र है और तराशे हुए हीरे के समान उसमें अपनी चमक है जो मन को चमत्कृत करती है। इस कृति में भाषा के साथ इन्होने थोड़ी स्वतंत्रता से काम लिया है। अशुद्ध, ग्रामीण, तद्भव, प्रादेशिक, स्थानीय एवं विकृत शब्द स्थान-स्थान पर मिल जाते हैं। वो, पछुवा, अकास, आस, हेरा, लिखत, मनभाने, गोरियाँ, भोरियाँ, हरियाँ, भरियाँ कालियाँ जैसे शब्दों की कमी नहीं। शब्दों के इन नए प्रयोगों से—यदि इन्हें नया प्रयोग कहा जाय तो यह भ्रम उत्पन्न होता है कि खड़ी बोली में अभी इतनी शक्ति नहीं आई कि वह सभी प्रकार के भावों को व्यक्त कर सके—यद्यपि मैथिलीशरण गुप्त, पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी आदि के काव्य को देखते हुए यह आशंका निर्मूल ठहरती है। वस्तु-स्थिति यह है नहीं। भाषा के क्षेत्र में यह तो प्रवाह को थोड़े उल्टे ले जाना हुआ। प्राणवान, अर्थगर्भित, रससिक्त शब्द जहाँ से भी मिलें उन्हें ग्रहण कर लेना चाहिए। पर 'बावरा अहेरी' में बहुत-से प्रयोग बूंद बनकर प्रवाह के साथ नहीं बह पाए, वे अनगढ़-शिला-खडों से कहीं गति को अवरुद्ध करते हैं, कहीं एकत्रित बालू से गद्यात्मकता की सृष्टि करते हैं और कहीं घास-फूस से जल में बहते हुए भी धारा का अविभाज्य अंग नहीं प्रतीत होते।

इनकी रचनाओं के कुछ विशिष्ट अंश देखिए—

(१)

बावरे अहेरी रे
कुछ भी अवध्य नहीं तुझे, सब आखेट है.
एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी कलौंस को
दुबकी ही छोड़कर क्या तू चला जायगा?

(२)

ऊपर फैला है आकाश, भरा तारों से—
भार-मुक्त से तिर जाते हैं

पंछी
डैने बिना हिलाये।
जी होता है मैं सहसा गा उठूं
उमगते
स्वर जो कभी नहीं भीतर से फूटे
कभी नहीं जो मैंने—
कहीं किसी ने—गाए।
किंतु अधूरा है आकाश
हवा के स्वर बंदी है
मैं धरती से बँधा हुआ हूँ—
हूँ ही नहीं प्रतिध्वनि भर हूँ
जब तक
नहीं उमगते तुम स्वर में मेरे प्राण स्वर

(३)

फूल को प्यार करो
पर झरे तो झर जाने दो,
जीवन का रस लो :
आसक्ति नही आनन्द है सम्पूर्ण व्यक्ति की
अभिव्यक्ति :
मरूं मैं, किंतु मुझे घोषित यह कर जाने दो।

शमशेरबहादुर सिंह

शमशेरबहादुर सिंह की रचनाओं में प्यार की मस्ती, प्रकृति की विविध भाव भंगियाँ, साथ ही शहीदों और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने वालों के लिए सहानुभूति बिखरी पड़ी है। एक ओर मन की मस्ती, दूसरी ओर विद्रोही हृदय, ये दो विरोधी गुण इनकी कविताओं में एक साथ खिल उठे हैं—

(१)

मोटी, धुली लॉन की दूब
साफ़ मख़मल की कालीन
ठंडी, धुली, सुनहरी धूप।
हलकी मीठी चा सा दिन,
मीठी चुस्की सी बातें,
मुलायम बाहों सा अपनाव।
अकेला हूँ। आओ!

—दूब

(२)

ये वही बादल घटाटोपी
बिजलियाँ जिनमें चमकतीं
खून में जिनके कड़क ऐसी कि
—गोलियाँ चलतीं?

—वर्ली किसान

नए कवियों में ये पहले कवि हैं जिनके भाव पक्ष से अधिक उनके कला-पक्ष पर ध्यान जाता है। पहली बात यह कि जिन बहुत सी रचनाओं को ये कविता का नाम देते हैं, वे कविता नहीं हैं जैसे 'राग' और 'आओ'

गद्य-गीत के अंतर्गत आयेंगी। 'सूरज उगाया जाता' पर भी यही बात लागू होती है। दूसरी बात यह कि संगीत और कविता सुनकर भी ये कभी कभी रचनाएं करते हैं। 'रेडियो पर बाख का सङ्गीत' और 'चित्तप्रसाद की स्प्रिंग शीर्षक कविता सुनकर' ऐसी ही रचनाएं हैं। इस प्रकार कविता में ये नए प्रयोगों के प्रेमी हैं। 'अमन का राग' में जो एक लम्बी रचना है, गद्य-गीत काव्य-निबंध की ओर झुकता प्रतीत होता है। इनके वाक्यों की आत्मा महापुरुषों या पैगंबरो के स्वर में बोलने वाली और उनकी गठन हिंदी के प्रसिद्ध निबंधकार सरदार पूर्णसिंह की शैली से विलक्षण साम्य रखती है। इन्होंने बहुत-सी ग़ज़लें भी लिखी हैं—कुछ उर्दू में, कुछ हिंदी में, कुछ मिली जुली भाषा में। उर्दू में लिखी ग़ज़लो को हिंदी की कविता केवल इसी आधार पर माना जा सकता है कि वे देवनागरी लिपि में हैं। इन सभी प्रकार की ग़जलों में कोई-कोई शेर कहीं-कहीं चमक उठता है।

सभी प्रकार की शैलियो के कुछ उदाहरण देखिए—

(१)

आँखें मूँद गईं।
सरलता का आकाश था
जैसे त्रिलोचन की रचनाएं।
नींद ही इच्छाएं।

(२)

मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टैचू उतना ही प्यारा है
जितना मास्को का लाल तारा
और मेरे दिल में पेकिंग के स्वर्गीय महल
मक्का मदीना से कम पवित्र नहीं
मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुनता हूँ
जो वोल्गा से आए
मेरी देहली में प्रह्लाद की तपस्याएं दोनों दुनियाओं की चौखट पर
युद्ध के हिरण्यकश्यप को चीर रही हैं।

(३)

रात की हँसी है तेरे गले में,
सीने में,
बहुत काली सुर्मयी पलकों में,
सांसों में, लहरीली अलकों में,
आई तू, ओ किसकी !
फिर मुस्कराई तू
नींद में—खामोश—वस्ल ।

(४)

हक़ीक़त को लाए तखैयुल से बाहर,
मेरी मुश्किलों का जो हल कोई लाए।

(५)

मत उपेक्षा से मुझे देखो कि हूँ वह मौन स्वप्न,
जो तुम्हारे ही हृदय का मर्म अव्यक्तेन था

भवानीप्रसाद मिश्र

भवानीप्रसाद मिश्र की रचनाओं में एक प्रकार की ऐसी नवीनता, ताज़गी और सरलता पाई जाती है जो आज के किसी दूसरे कवि में दृष्टि-गोचर नहीं होती। विषय का चयन और वर्णन करने का ढंग उनका अपना ही है। उनके काव्य की शक्ति किसी असाधारण तथ्य पर निर्भर नहीं करती। साधारण को साधारण बनाए रखकर हृदय को सीधे छूने में ही वे विश्वास रखते हैं। मौलिकता और अछूतेपन के गुणों से उनकी रचनाएँ ओतप्रोत हैं।

मिश्र जी की रचनाओं को पढ़कर पहला प्रभाव जो पाठक पर पड़ता है वह यह कि वे प्रकृति के बड़े प्रेमी हैं। इस क्षेत्र में प्राकृतिक वस्तुओं, उनके क्रियाकलापों और उन द्वारा उत्पन्न रम्य और भयंकर वातावरणों के वर्णनों में अनूठी कल्पनाओं और नए उपमानों को वे इस प्रकार आँखों के सामने लाते हैं कि वर्ण्य-विषय का सजीव चित्र खड़ा हो जाता है। उनके प्रकृति वर्णन जीवन से प्रायः सम्बद्ध हैं। किसी घने जंगल का वर्णन है तो गोंडों के नृत्य-गीत का ध्यान इन्हें हो आता है, सन्नाटे का चित्र खींचते हैं तो कल्पना करते हैं कि वहाँ कभी किसी को फाँसी लगी होगी जिसकी रुँधी आवाज़ आज भी इन्हें सुनाई देती है, वर्षा का स्वागत करते हैं तो न जाने कितनी सुहागिनें इनकी आँखों के आगे घूम जाती हैं—

(१)

सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से
उँघते अनमने जंगल।
सड़े पत्ते, गले पत्ते
हरे पत्ते, जले पत्ते

वन्य पथ को ढक रहे से
पंक-दल में पले पत्ते
झोंपड़ी पर फूस डाले
गोंड़ तगड़े और काले
जब कि होली पास आती
सरसराती घास गाती
और महुए से लपकती
मत्त करती बास जाती
गूंज उठते ढोल इनके
गीत इनके गोल इनके
सतपुड़ा के घने जंगल
ऊंघते अनमने जंगल।

(२)

बूंद टपकी एक नभ से
किसी ने झुक कर झरोखे से
कि जैसे हँस दिया हो,
हँस रही सी आँख ने जैसे
किसी को कस दिया हो,
ठगा सा कोई किसी की आँख
देखे रह गया हो,
उस बहुत से रूप को, रोमांच रोके
सह गया हो।

(३)

पीके फूटे आज प्यार के पानी बरसा री।
हरियाली छा गई, हमारे सावन सरसा री।
फिसली सी पगदंडी, खिसली आँख लजीली री,
इंद्रधनुष रंग रँगा आज मैं सहज रँगीली री,

रुनझुन बिंदिया आज, हिला-डुला मेरी बेनी री,
ऊँचे-नीचे पैंग, हिंडोला सरग-नसेनी री,
और सखी सुन मोर ! विजन वन दीखे घर सा री।
पीके फूटे आज प्यार के, पानी बरसा री।

चिंतनशीलता इनकी रचनाओं का एक विशेष गुण है। इनकी बहुत-सी रचनाएँ विचार-प्रधान हैं। यहाँ भी ये बड़ी से बड़ी बात सरल से सरल भाषा में कहने के अभ्यासी है। इनकी रचनाएँ जीवन में प्रेरणा फूँकतीं और अच्छे संस्कार जगाती हैं। इनके विचारों पर गांधी-दर्शन का प्रभाव कहीं-कहीं स्पष्ट लक्षित होता है—

(१)

कितने भी गहरे रहें गर्त
हर जगह प्यार जा सकता है,
कितना भी भ्रष्ट जमाना हो
हर समय प्यार भा सकता है;
जो गिरे हुए को उठा सके
इससे प्यारा कुछ जतन नहीं,
दे प्यार उठा पाए न जिसे
इतना गहरा कुछ पतन नहीं।

(२)

माथे को फूल जैसा
अपने चढ़ा दे जो,
रुकती-सी दुनिया को
आगे बढ़ा दे जो;
मरना वही अच्छा है
प्राणी का वैसे और
दुनिया में टोटा नहीं,

कोई प्राणी बड़ा नहीं
कोई प्राणी छोटा नहीं।

स्वयं कविता भी इनके चिंतन का एक विषय है। 'कमल के फूल' रचना काव्य-विषय पर ही है। इसमें मानसर और कमल के अतिरिक्त बीच, तीर, अंचल और भूल शब्द भी विशिष्ट अर्थ के द्योतक हैं। कमल यहाँ कविता का पर्याय है। कविता मानस से उमड़ती है—सहज भाव से। श्रेष्ठ कवि किनारे पर नहीं, गहराई में जाकर ही उसे पा सकता है। पर पाने पर वह उसका करे क्या! उसकी सार्थकता तो इसी में है कि पाठकों का अंचल भर जाय—

फूल लाया हूँ कमल के।
क्या करूँ इनका?
पसारें आप आँचल
छोड़ दूँ;
हो जाय जो हल्का!
किंतु होगा क्या कमल के फूल का?
ये कमल के फूल
लेकिन मानसर के हैं,
इन्हें हूँ बीच से लाया
न समझो तीर पर के हैं।

इस प्रकार की कविताओं में इनकी 'गीत फ़रोश' रचना की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। काव्य एक साधना है, यह आदर्श आज के युग में चलता दिखाई नहीं देता। श्रेष्ठ काव्य को परखने वाली काव्य-प्रेमियों की रुचि आज कुंठित हो गई है। काव्य का प्रसार और प्रचार आज भिन्न-भिन्न रुचि वाले पाठकों की व्यक्तिगत पसंद पर निर्भर करता है। यह रुचि अस्थिर और असंस्कृत है। आज का कवि यदि अपने को अपने पाठक तक पहुँचाना चाहता है तो या तो वह, जो वे चाहें, वह लिखे या फिर अपनी साधना का गला घोंट दे। इस प्रकार यह रचना

आज के पाठक की गिरी रुचि और कविता के मूल्य की डाँवाडोल स्थिति की सूचक है। एक प्रकार से आज के गद्य-युग पर यह एक तीखा व्यंग्य है। यह एक एकालाप है। बातचीत दो व्यक्तियो के बीच चल रही है, यद्यपि बोल रहा केवल एक व्यक्ति है। प्रश्न उत्तरों में ही ध्वनित हैं। कविता नाटकीय कथोपकथन का विलक्षण माधुर्य लिए हुए है। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।
मैं तरह तरह के
गीत बेचता हूँ;
मैं सभी किसिम के गीत
बेचता हूँ।
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर पीछे पीछे अक्ल जगी मुझको;
जी, लोगों ने तो बेच दिए ईमान।
जी, आप न हों सुनकर ज्यादा हैरान।
मैं सोच-समझकर आख़िर
अपने गीत बेचता हूँ;
जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ।
जी, छंद और बे छंद पसंद करें—
जी, अमर गीत और वे जो तुरत मरें।
इनमें से भायें नहीं नए लिख दूँ?
जो नए चाहिए नहीं, गए लिख दूँ।
इन दिनों कि दुहरा है कवि का धंधा
हैं दोनों चीज़ें व्यस्त, कलम कंधा।
जी, गीत जन्म का लिखूं, मरन का लिखूं।
जी, गीत जीत का लिखूं, शरन का लिखूं,
यह गीत रेशमी है, यह खादी का

यह गीत पित्त का है, यह बादी का।
कुछ और डिजाइन भी हैं, ये इल्मी—
यह लीजे चलती चीज नयी, फिल्मी।
जी, नहीं दिल्लगी की इसमें क्या बात ?
मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन-रात।
जी, बहुत ढेर लग गया हटाता हूँ
गाहक की मर्जी अच्छा जाता हूँ।
मैं बिल्कुल अंतिम और दिखाता हूँ—
या भीतर जाकर पूछ आइए, आप।
है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप,
क्या करूँ मगर लाचार हार कर
गीत बेचता हूँ।
जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ।

भवानीप्रसाद का विश्वास है कि सृष्टि का प्रत्येक व्यक्ति एक भिन्न उद्देश्य लिए आता है, अतः उसके अंतर में जो सर्वश्रेष्ठ निहित है, उसका विकास होना चाहिए। सामूहिक कल्याण में विश्वास रखते हुए भी व्यक्तित्व की रक्षा पर इन्होंने कहीं-कहीं बल दिया है। घृणा से प्रेम, नाश से निर्माण, दंड से क्षमा, दोष-दर्शन से सहानुभूति को ये श्रेष्ठ समझते हैं। कर्म का लक्ष्य इनकी दृष्टि में है आनन्द। मिश्र जी को सच्चा कवि-हृदय प्राप्त हुआ है।

गिरिजाकुमार माथुर

गिरिजाकुमार माथुर के तीन काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं—मंजीर, नाश और निर्माण तथा धूप के धान।

मंजीर की ध्वनि में पहला स्वर है करुण गंभीर विषाद का। जीवन में प्रेम की भावना सफल नहीं हो पाई। इसी से अभाव हृदय में बहुत गहरे घुसकर बैठ गया है। इस अभाव चारों ओर सूनापन बिखेर दिया है।

विषाद का यह स्वर प्रेम की असफलता से फूटा है। कवि को यह पछतावा बराबर रहा है कि उसके भाव को दूसरे पक्ष ने ठीक से नहीं पहचाना। हो सकता है यह आरोश व्यक्तिगत जीवन में ठीक हो, फिर भी प्रेम से पहिले, शीर्षक रचना में उन्होंने नारी को जो मायाविनी, दुरावमयी, निठुर, अनेक पति वाली द्रौपदी, छलना आदि कहा है, वह न तो उसके वास्तविक स्वरूप को ठीक से पहचानना है और न उसके साथ न्याय ही करना। इधर पुरुष को जितना भोला चित्रित किया गया है, उतना भोला भी शायद वह नहीं होता।

नारी के प्रति यह धारणा विफलता की भावना से प्रसूत है। नहीं तो इन रचनाओं में अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य से कवि के प्राण अभिभूत हैं, उसके मादक प्रभाव में वह स्थान-स्थान पर बह गया है। अपनी प्रेमिका के साथ रोमांस के पलों की स्मृति उसके हृदय में विचित्र सिहरन जगा जाती है। कहीं-कहीं विलास के पलों के संकेत ऐसे अवर्णनीय सुख का संदेश देते हैं कि पाठक भी उत्तेजना का अनुभव करने लगता है—

बड़ा काजल आँजा है आज,
भरी आँखों में हलकी लाज।
  अधर पर धर क्या सोई रात

अजाने ही मेंहदी के हाथ,
मला होगा केसर अंगराग
तभी पुलकित चंपक सा गात।
आज तेरा भोलापन चूम
हुई चूनर भी अल्हड़ आज,
हुए अनजान अचानक ही
कुसुम-से मसले बिखरे साज़।
बड़ा काजल आँजा है आज।

प्रेम-भाव की मधुर अभिव्यंजना के साथ प्रकृति के सफल चित्रण गुँथे पड़े हैं। स्वभावतः इनमें संध्या और अर्द्ध रात्रि के चित्र अधिक हैं—दोनों का वातावरण उदास एवं करुण है न! यह प्रकृति प्रायः उद्दीपन के रूप में आई है या फिर मानवीय भावों की छाया बनकर। कहीं-कहीं स्वतंत्र चित्र भी हैं। नारी रूप में वर्षा का यह चित्र ही कितना रम्य है—

आई बरसात आज!
गीली अलकों से वारि-बूँदें चुआती हुई,
झीनी झोलियों से मुक्त मुक्ता लुटाती हुई,
कोयल सा श्यामल स्वर
भीगी अमराई से आता है पल-पल पर,
सुरमीली आँखों को ढाँक रही श्याम अलक,
साँवली बदलियों का उड़ता-सा घूँघट पट,
छिपता-सा इंदु बदन जाता है झलक-झलक,
उठती नत चितवन जब हलकी-सी विद्युत बन।

गिरिजाकुमार की प्रेम की भावना यद्यपि लौकिक, स्थूल और स्वाभाविक ढंग की रही है; पर शैली पर कहीं कहीं छायावादी कवियों की छाप है। उस पार बसे सोने के संसार की थोड़ी-बहुत चर्चा इनकी रचनाओं में भी पाई जाती है। प्रसन्नता की बात है कि आगे चलकर इनके

स्वभाव में ओज आ गया और रहस्य की ओर मुड़ने वाले ये संस्कार अधिक देर नहीं ठहर पाए।

स्वतंत्र रूप से 'तुलसी' 'जौहर' 'लोरी' 'मा' 'अदन पर बम वर्षा' सभी रचनाएँ सफल हैं। गिरिजाकुमार को अत्यंत कोमल भावुक और संवेदनशील हृदय प्राप्त हुआ है। इस भावुकता का अंचल गंभीरता पकड़े हुए है।

शब्दों में 'इक' 'ना' 'आन' के प्रयोग उन्होंने भी किए हैं। कहीं-कहीं 'पूछो हो' लिख गए हैं। इसी प्रकार उजलें क्रिया बना ली है। पर प्रारंभिक कृति में ऐसी छोटी-मोटी भूलें दोषों के अंतर्गत नहीं आतीं। मनोदशा और वातावरण को ठीक से चित्रित करने के लिए ये कहीं-कहीं नए उपमान जुटाते हैं जैसे 'मरते ओले जैसा मन' 'रुँधी हुई छाती-सा सूनापन।' जिन प्राकृतिक वस्तुओं के केवल रूप या प्रभाव पर ही हमारा ध्यान जाता है, उसकी स्थूलता सूक्ष्मता भी ये न जाने कैसे देख लेते है जैसे 'पतली चाँदनी।'

'नाश और निर्माण' का पूर्वार्द्ध प्रेम के सपने के टूटने की कहानी दुहराता है। प्रेम में उधर से प्रतिदान नहीं मिला; अतः प्रेमी का हृदय निराशा और व्यथा से भर गया है। निराशा की अतिशयता में वह कभी-कभी प्यार पर ही संदेह करने लगता है। अतीत के कुछ सुखद पल और मिलन-स्थल जिस समय स्मृति में आकर घूमते हैं, उस समय वह बड़ी भारी आकुलता का अनुभव करता है। यहाँ प्रकृति का चित्रण भी प्रेमी की मानसिक दशा के अनुकूल हुआ है—

कौन थकान हरे जीवन की
वंशी में अब नींद भरी है
स्वर पर पीत साँझ उतरी है
बुझती जाती गूँज अखीरी—
इस उदास वन-पथ के ऊपर
पतझर की छाया गहरी है

अब सपनों में शेष रह गईं
सुधियाँ उस चंदन के वन की।

उत्तरार्द्ध में हम कवि को नई मानसिक स्थिति के साथ नवीन जीवन की ओर बढ़ते पाते हैं। अतीत की दुःखद स्मृतियों से उसने पीछा छुड़ा लिया है और नए आनन्द के नए आलोक से वह अपने मन के कक्ष को जगमगाने जा रहा है। यह नवीन आलोक भी प्रेम का ही है जो किसी नये प्राणी से मिला है। यहाँ वातावरण, सौंदर्य और शृङ्गार तीनों ही मनोरम हैं। इस प्यार में वासना और भोग का पुट भी है ही।

(१)

इस रङ्गीन साँझ में तुमने
पहने रेशम वस्त्र सजीले
भरी गोल गोरी कलाइयों में पहिनी थीं
नयन डोर-सी वे महीन रेशमी चूड़ियाँ
चन्दन बाँह उठाते ही में
खिसल चलीं वे तरल गूँज से
उदय हो रहा इंदु सुनहला
पूर्व सिंधु से जैसे ऊपर उठता आता
रत्न कलश भर कर संपूर्ण सुधा रजनी की
आज यही रस डूबा चांद बन गई हो तुम।

(२)

पूस की ठिठुरनभरी इस रात में
कितनी तुम्हारी याद आई।
याद आए मिलन वे
मसली सुहागिन सेज पर के सुमन वे!

सुख के इन पलों में पराजित जीवन की स्मृति भारी बनकर शिला सी न बैठती हो, ऐसी बात नहीं है; पर कवि उस स्मृति को धकेलकर खुले

वातावरण में सांस लेने लगता है। इसे कृति के उत्तरार्द्ध का निर्माण न समझकर निर्माण की भूमिका ही समझना चाहिये।

प्रेम के जीवन के अतिरिक्त आज की आर्थिक विषमता पर भी जिसके कारण व्यक्ति का जीवन विषमय होता जा रहा है, गिरिजाकुमार की दृष्टि गई है। युग की पृष्ठभूमि में मध्यवर्ग की आशा आकांक्षाओं, विफलता निराशाओं, स्वप्न और असंतोष का जैसा यथातथ्य वर्णन गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में मिलता है, वैसा अन्यत्र पाना दुर्लभ है। आधुनिक सभ्यता और विज्ञान की देन के बीच किसी बड़े नगर के मध्यवर्ग के युवक-युवतियों की प्रेम-क्रीड़ाओं का वर्णन ही एक प्रकार से इनकी कविता का विषय रहा है। गिरिजाकुमार माथुर निश्चित रूप से आधुनिक नगरों के कवि हैं। उनकी रचनाओं में बार-बार सिविल लाइन्स, लॉन, बँगला, कार, रेडियो, बल्ब, चिक, खिड़की, घड़ी यहाँ तक कि प्लेट और चम्मच की भी चर्चा हुई है। किसी निम्न मध्यवर्ग के व्यक्ति के जीवन की तुलना उच्च वर्ग को प्राप्त होने वाली सुविधाओं से करते हुये वे कहते हैं—

कुहरा भरा भोर जाड़ों का
पर वह मजबूरी से कँपता उठ आया है
दोनों बाँह कसे छाती पर।
पीले से गालों पर है कुछ शेव बढ़ी सी
मसली हुई कमीज के कफ़ में
बटनों के बदले दो डोरे बँधे हुए हैं
रफ़ू किया उसका वह स्वेटर
तीन सर्दियां देख चुका है
बुझी हुई सिगरेट रात की पीते-पीते
घड़ी देखता जाता है वह
जिसके एक जगह चलते रहते कांटों सा
उसका जीवन जीवनहीन मशीन बन गया।
कोकोजम में तले परांठों के ही बल पर

वह दिमाग का बोझा ढोता
और साथ में
क्षय सा काला नाग पालता रक्त पिलाकर।
नगर भरा है सुंदरता से
ऊंचे-ऊंचे चंदन रंग के महल खड़े हैं
फैली हैं काजल-सी चिकनी चौड़ी सड़कें
दूर दूर तक
बीच-बीच में मोती के गुच्छों से
गोरे पार्क बने हैं,
मखमल से हैं हरी घास के लॉन मुलायम
उजले अँगरेजी महलों से
मृदुल पियानो के स्वर आते
बाहर महलों पर मिठास है फैली फैली
क्रीम सैंट की खुशबू भरी मोटरें जातीं।

माथुर की दृष्टि इस देश के उन महापुरुषों पर भी ठहरी है जो हमारी श्रद्धा के भाजन रहे हैं। इनमें राम-रहीम की एकता स्थापित करने वाले कबीर, प्रेम से संसार को जय करने वाले गौतम और इतिहास तथा युगों को चीर कर आज तक जनता के हृदय में घर करने वाले राम मुख्य हैं।

इस प्रकार प्रेम की निराशा से उसके आनन्द, व्यक्ति के मन से उसके व्यापक जीवन और विचारों से आदर्श की ओर अब तक गिरिजा-कुमार की कविता बही है।

अभिव्यञ्जना पर अब भी कहीं-कहीं छायावादी शैली का प्रभाव है। मानवीकरण गिरिजाकुमार को बहुत प्रिय है। इनकी भावना बड़ी रङ्गीन और रोमांटिक रही है। रङ्गों की ओर जैसी रुचि गिरिजाकुमार ने प्रदर्शित की है, वैसी किसी अन्य कवि ने नहीं। सोना, रेशम, चंदन और केशर की चर्चा इनकी रचनाओं में प्रायः मिलती है। ये वस्तुएँ उच्च और

मध्यवर्ग की संस्कृति का जिसका चित्रण गिरिजाकुमार ने किया है, विशिष्ट अङ्ग हैं।

'धूप के धान' में पहली बार गिरिजाकुमार माथुर ने समस्त एशिया को अखंड रूप में देखा है और उसकी आत्मा को अभिव्यक्ति दी है। यहीं तक नहीं, बल्कि जैसे छायावादी कवियों में सुमित्रानंदन पंत ने विश्व-व्यापी समस्याओं का अपने ढंग से समाधान किया है, वैसे ही प्रयोगवादी कवियों में इन्होने उन्हें उठाया है। इस प्रकार ये एक ऐसे व्यापक-भावना-सम्पन्न कवि हैं जिनकी चेतना की परिधि अत्यधिक विस्तृत है। ऐसी रचनाओं में इतिहास के सत्य और काव्य की कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। इस दृष्टि से 'एशिया का जागरण', 'धरा दीप' और 'पहिए' आदि रचनाएं बड़ी शक्तिशाली बन पड़ी हैं।

अपनी एकाध रचना द्वारा इन्होंने उस मध्यकालीन विचारधारा का विरोध किया है जिसके अनुसार शरीर को हेय दृष्टि से देखा जाता था। शरीर को महत्ता प्रदान करने वाली ऐसी रचनाएं आधुनिक विचार-जगत में एक महत्वपूर्ण दान का सूत्रपात करेंगी। इसके अतिरिक्त मध्य वर्ग बहुत ही स्पष्ट रूप से इनके काव्य में प्रतिबिंबित हुआ है। इसमें उस जीवन की मिठास भी अंकित है और कड़ुवाहट भी। यथार्थ की रक्षा के लिए जीवन के अभावों और उसकी अपूर्ण आकांक्षाओं की चर्चा करते हुए भी इनकी रचनाओं का मूल स्वर आशा और आस्था का है।

इस कृति में सबसे अधिक संख्या है प्रकृति संबंधी रचनाओं की। इन रचनाओं में अपने देश की ही नहीं, विदेश की प्रकृति के सौंदर्य को भी गिरिजाकुमार माथुर ने अंकित किया है। सौंदर्य का यह चित्रण मन को कोमलता की भावना से भर देता है। प्राकृतिक वस्तुओं के खंड चित्रों के अंतर्गत उठने वाली सौंदर्य छवियाँ प्रायः संश्लिष्ट हैं; अतः देर तक मन को मुग्ध करती हैं। वातावरण का चित्रण ये बड़ी पटुता और सूक्ष्मता से करते हैं। ऐसे स्थलों पर परिस्थिति के अनुसार ये रूप, रंग, गंध और स्पर्श की चेतनाओं को धीरे-धीरे उभारते चलते हैं। जहाँ शुद्ध प्रकृति के

वर्णन नहीं हैं, वहाँ इन्होंने उसे अपनी अन्य भावनाओं की तुष्टि के लिए चुना है। प्राकृतिक वस्तुओं पर नारी-भावना या उसके विविध अंगों का जहाँ आरोप है वहाँ चुंबन आलिंगन 'छुवन' 'मसलन' की चर्चा प्रायः हुई है। भोग के ये चित्र पाठक की वासना को उद्दीप्त करते हैं। प्रकृति और जीवन का मिला-जुला वर्णन भी इन्होंने कहीं-कहीं किया है। ऐसे स्थलों पर जीवन के साधारण चित्र ये आँखों के सामने लाते हैं और प्रकृति से अधिक जीवन पर चिंतन करते पाए जाते हैं।

पिछली रचनाओं की अपेक्षा रोमांस की भावना इस कृति में अधिक स्पष्ट हुई है। यों प्रेमिका का सीधा संबोधन इन रचनाओं में कम है। यहाँ तो यह वृत्ति या तो स्मृति रूप में उभरी है या फिर ऋतु वर्णन में। आधुनिक काव्य में शुद्ध रोमांस की भावना बहुत कम पाई जाती है। विरह के वर्णन तो इन कवियों ने बहुत मार्मिक ढंग से किए हैं; पर मिलन के चित्र अंकित करते समय इनकी लेखनी न जाने क्यों कुंठित हो जाती है। इस दृष्टि से गिरिजाकुमार के वर्णन अपेक्षाकृत अधिक सफल हैं। प्यार को इन्होंने एक स्वस्थ भावना के रूप में ही ग्रहण किया है।

कला की दृष्टि से गिरिजाकुमार माथुर की रचनाए पढ़ते समय यह स्पष्ट आभासित होता है कि काव्य की सभी दिशाओं में एक नया युग अवतीर्ण हुआ है। छायावाद-युग में कविताओं के शीर्षक जैसे छोटे, सरल और सकेत-मधुर होते थे, अब वैसे नहीं होते। अब तो वे काफी लम्बे, विलक्षण और गद्यात्मक होने लगे हैं जैसे 'नींव रखने वालों का गीत', 'धूप का ऊन' और 'बरफ़ का चिराग़' आदि। छायावादियों की साधना से पिछले दिनों खड़ी बोली स्निग्ध, मधुर, प्रांजल और परिमार्जित होकर बड़ी काव्योपयोगी हो उठी थी। पर प्रयोगवादी काव्य में फिर उन विकृत शब्दों का प्रयोग होने लगा है जिन्हें बड़ी कठिनाई से हम दूर कर पाए थे। 'धूप के धान' में ही ऊगे, पै, थिर, दिखता, उजल, चाँदनि, चंदरिमा जैसे दर्जनों शब्दों का प्रयोग मिलेगा। मुक्त छंद का प्रयोग बढ़ रहा है, यद्यपि यह स्पष्ट है कि इसके प्रयोग में 'निराला' ने जैसे प्राण ढाले थे,

वैसे नहीं ढल पा रहे। इस बात से मतभेद हो सकता है; पर मेरी व्यक्ति-गत धारणा है कि गिरिजाकुमार मुक्त छंद की अपेक्षा गीत अधिक सफलतापूर्वक लिख सकते हैं। इन्होंने बहुत से नए प्रतीकों, उपमाओं, रूपको और शब्द-चित्रो का प्रयोग किया है। विशेष रूप से जब किसी विशेषण का प्रयोग ये करते हैं तो अभिव्यक्ति में एक अतिरिक्त चमक आ जाती है। उदाहरण के लिए 'क्वारी मिट्टी' 'कपूरी लौ' 'ठंडा आलोक' और 'साँवरी रैन' को देखिए। गिरिजाकुमार माथुर काव्य को एक कठिन साधना के रूप में स्वीकार करने वाले कवि है और उनकी रचनाओं के पीछे गंभीर चिंतन और गहरी अनुभूति छिपी रहती है। नए युग में जीवन-सौंदर्य और मुक्ति के गीत-गायकों में गिरिजाकुमार का नाम आगे की पंक्ति में रहेगा।

कुछ रचनाएं देखिए—

(१)

आज जीत की रात
पहरुए; सावधान रहना
ऊंची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है
शोषण से मृत है समाज
कमजोर हमारा घर है
किंतु आरही नई जिंदगी
यह विश्वास अमर है
जनगंगा में ज्वार
लहर तुम प्रवहमान रहना।

(२)

नैन हुए रतनार गुलाब से अंग खिले कचनार कली से।

फूले पलाश सी
पूनम आई
चाँद के अंक में
रैन समाई
कुंद कपोलों पै
फैली ललाई
केसर चुंबन से हुए रंजित अलसित तन चिकने कदली से ।
कर में मसल गये
फूलों के कंगन
रंजित तन पै
मसल गये फागुन
उभरे लिपटकर
चीर सुहावन
छिटकी चमेली सी भुज बंधनों में चमके नयन हँसती बिजली से ।

(३)

उतरती आती छतों से
सर्दियों की धूप
उजले ऊन की मृदु शाल पहिने
वह मुंडेरों पर ठहरकर
झाँकती है झँझरियों से
रात के धोये हुए उन आँगनों में
और अलसाये हुए
कम्बल, लिहाफ़ों, बिस्तरों पर
जो उठाये जा रहे हैं
रात की मीठी कथा के
पृष्ठ पलटे जा रहे हैं...

(४)

हमको भी है ज्ञान विरह का
और मिलन का
यह मत समझो बरफ बन गया हृदय हमारा
या कालान्तर में पथराये भाव हमारे
या हमको है नहीं किसी की याद सताती
पर वह तुमसे बहुत भिन्न है
हम मन में सुधि रखकर भी
हैं कर्मशील
आज हमारे संमुख और समस्याएं हैं
प्रश्न दूसरे
घर के, बाहर के, समाज के
मुल्क और दीगर मुल्कों के...

धर्मवीर भारती

नवयुवक साधकों में इधर धर्मवीर भारती ने औरों की अपेक्षा थोड़ा अधिक ध्यान आकर्षित किया है।

'ठंडा लोहा' में अधिकता प्रेम-सम्बन्धी कविताओं की है। भारती का प्रेम का जीवन कुछ भिन्न प्रकार का रहा है, इसी से उसके ग्रहण में अपनी विशेषता है और आकर्षण भी; इसीसे अभिव्यक्ति में एक प्रकार की विलक्षणता है और नूतनता भी; इसी से उनकी धारणाओं में एक प्रकार की मौलिकता है और मुहर भी। इस जीवन की स्फूर्ति और उदासी उनकी एकदम अपनी हैं।

यह प्रणय व्यापार समभाव से प्रारंभ होता है अर्थात् एक ने दूसरे को पाने के लिए कोई प्रयत्न किया हो, ऐसा कहीं नहीं दिखाई देता। प्रथम भेंट से ही दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित हैं। जहाँ तक बौद्धिक स्वर का सम्बन्ध है कवि शिक्षित व्यक्ति है, नायिका गाँव की अल्हड़ बालिका। पर जहाँ तक भाव की गहराई का प्रश्न है, वह दोनों में से किसी में कम नहीं प्रतीत होती। कुल मिलाकर इस प्रणय-व्यापार में कई बातें पाई जाती हैं—गहरी भावुकता और मौलिकता, जीवन की स्वच्छंदता और अकृत्रिमता, लोक-जीवन की गूंज और मर्यादा, वासना की तीव्रता और ऊष्णता, एक प्रकार की रीतिकालीन मनोवृत्ति और उर्दू-कविता की नाज़ुक ख़याली।

कवि प्रेमिका के रूप से अत्यधिक प्रभावित है, यहाँ तक कि वह वर्णन करते-करते थकता नहीं। पर इस रूप-चिंतन में वासना आ समाई है। इसे कवि स्वीकार ही नहीं करता, प्रेम के जीवन में इसका समर्थन भी करता है—

अगर मैंने किसी के ओठ के पाटल कभी चूमे,
अगर मैंने किसी के नैन के बादल कभी चूमे,

महज़ इससे किसी का प्यार मुझको पाप कैसे हो ?
महज़ इससे किसी का स्वर्ग मुझ पर शाप कैसे हो ?
किसी की गोद में सर धर
घटा घनघोर बिखराकर, अगर विश्वास सो जाए,
धड़कते वक्ष पर मेरा अगर व्यक्तित्व खो जाए,
न हो यह वासना तो ज़िंदगी की माप कैसे हो ?
किसी के रूप का सम्मान मुझ पर पाप कैसे हो ?

साथ ही इस रूप चिंतन में इतनी ही गहरी पवित्रता भी भरी हुई है। प्रेमिका की केश राशि पर दृष्टि पड़ते ही कवि कह उठता है—

प्रात सद्यः स्नात
कंधों पर बिखेरे केश
आँसुओं से ज्यों
धुला वैराग्य का संदेश
चूमती रह रह
बदन को अर्चना की धूप
यह सजल निष्काम
पूजा-सा तुम्हारा रूप।

एक ही प्राणी के प्रति दो विरोधी भावनाओं को पल्लवित करने वाले इस मन पर थोड़ा आश्चर्य हो सकता है; पर ऐसा होता है कि किसी पल में जिस व्यक्ति के प्रति वासना की दृष्टि उठती है, दूसरे पल उसी के प्रति यह मन पवित्रता से भर जाता है। यहीं तक नहीं जिसने प्रेम किया है वह जानता है कि एक ही पल में एक ही व्यक्ति के प्रति वासना और पवित्रता दोनों वृत्तियाँ साथ-साथ चल सकती हैं—

ये शरद के चाँद से उजले धुले से पाँव
मेरी गोद में।
ये लहर पर नाचते ताज़े कमल की छाँव
मेरी गोद में।

ये हवाएँ शाम की झुम झूमकर बरसा गईं
रोशनी के फूल हरसिंगार से।
अर्चना की धूप सी तुम गोद में लहरा गईं।
ये बड़े सुकुमार इनसे प्यार क्या
ये महज़ आराधना के वास्ते
जिस तरह भटकी सुबह को रास्ते
हरदम बताए हैं, रुपहरे शुक्र के नभ फूल ने,
ये चरण मुझको न दें अपनी दिशाएँ भूलने।

यह हुई जीवन को सुख पक्ष की बात। पर जीवन में मुसिकानें ही नहीं, आँसू भी हैं। सुख-पक्ष में जैसे भेंट के चित्र, रूप-वर्णन के चित्र, प्रेमिका के जगने और चलने के चित्र, भोलेपन, अल्हड़पन और लाज के चित्र, इस लाज को दूर करने के लिए बहकाने के चित्र, चुंबन और परिरंभन के चित्र हैं, उसी प्रकार दुःख-पक्ष के भी बहुत से ऐसे चित्र हैं, जो अपनी विविधता और मार्मिकता में बेजोड़ हैं। एक चित्र है उदासी का। प्रेमिका उदास है। प्रेमी नहीं जानता क्यों? एक अन्य रचना 'घबराहट की शाम' है। इसमें कवि चाहता है कि प्रेमिका उसे सान्त्वना देने के लिए घर का सारा काम-काज छोड़कर उसके पास आ बैठे। एक दिन प्रेमिका का विवाह किसी दूसरे से हो जाता है और तब जीवन ही बदल जाता है। कभी-कभी दोनों में पत्र-व्यवहार होता है। इस संग्रह में दो पत्र भी हैं—एक प्रेमिका का दूसरा कवि का। कवि की ओर से लिखा पत्र साधारण है, प्रेमिका का अत्यन्त प्रभावशाली। उसमें नारी का दुखता हृदय बोल रहा है। इस गंभीर वेदना की टक्कर का चित्र दूसरे पक्ष में कठिनाई से मिलेगा, पर भारती ने 'बातचीत का एक टुकड़ा' में दूसरी ओर भी वैसी ही छटपटाहट और मार्मिकता भर दी है।

'ठंडा लोहा' में कुछ नए ढग की कविताए भी हैं। ये सभी कविताएँ चिंतन-प्रधान हैं। इनमें भाव के स्थान पर कहीं विश्वास का स्वर प्रबल हो उठा है, कहीं कल्पना पर मार रही है, कहीं विचार की प्रधानता

रमा सिंह

कुमारी रमा सिंह की रचनाएँ चिंतन-प्रधान अधिक हैं। भाव-पक्ष न केवल दबा हुआ है, बल्कि उपेक्षित-सा है। मन की पुकार जैसे एकदम अनसुनी रह गई है। इसी से इन कविताओं में हृदय के स्पंदन के स्थान पर कल्पना की ऊँची से ऊँची उड़ान पाई जाती है। पंक्तियाँ रससिक्त होने के स्थान पर चिंतन के भार से बोझिल हैं। अपने मन को यदि कवयित्री थोड़ा मुक्त कर पाती तो अच्छा होता।

जीवन के सम्पर्क में आकर उसके भाव-पक्ष को स्पष्ट न करना और उसके सम्बन्ध में कुछ सोचने लगना समझ में नहीं आता। ऐसा संभवतः इनके चिंतनशील स्वभाव के कारण ही हुआ है। यों चिन्तन के लिए इन्होंने कई बड़े विषय उठाए हैं जैसे जीवन की व्यापकता, काल की विराटता, मनुष्य की अपराजेयता, शब्द की महत्ता आदि, पर बुद्धि अभी इन्हें अनास्था और आस्था के बीच घुमा रही है। जीवन में ये देखती हैं परिवर्तन। परिवर्तन की भावना अवसाद जगाती है। उससे सुख के प्रति विश्वास डिगता है। पर बुद्धि है कि नई आस्था उत्पन्न कर देती है। अतः कुल मिलाकर यह चिन्तन आकुल ही अधिक कर गया है; शांति नहीं दे पाया। यही कारण है कि जीवन के सुख को ये अभी तक कंचन-मृग ही कहे चली जा रही हैं। इनकी रचनाओं से कुछ उद्धरण लीजिए—

अरे यह साल भी बीता!
सफे हैं तीन सौ पैंसठ
बनी मोटी बही यह तो,
सभी के मूलधन औ' ब्याज
को टाँके रही यह तो;
सफ़े सब सरसरी सी दृष्टि से

देखे अभी मैंने,
चुभे हैं आज आँखों में
गणित के अंक यह पैने;
समय का कर्ज बढ़ता है
यही सब सोच मन रीता।

(२)

अँधियारी का ऐसा आलम
जिसमें बहुत घुटन है
कुहरे के इस तीखेपन में
अनतोला दंशन है,
अलसाई आंखों में मंथन
उफन उफन आता है,
कौन कल्पना—दूत विषैले
तीर चला जाता है,
सतरंगी किरणें चुप-चुप-सी संध्या में ढल जातीं,
बड़ा भयंकर सपना साथी पलकें खुल-खुल जातीं।

इनके काव्य में जहाँ प्रकृति की चर्चा है वे स्थल अपेक्षाकृत कुछ अधिक सरस और सफल बन पड़े हैं। इनका हृदय यदि थोड़ा-बहुत कहीं रमा है तो प्रकृति की रम्यता में ही। उसके प्रभाव का अंकन इन्होंने बड़ी पटुता से किया है—

(१)

कैसे क्रम से ऋतुएँ सारी
अदल बदल जाती हैं,
खिले फूल झर जाते
कलियाँ नई-नई आती हैं।
लहरें एक दूसरे को नरमी से देतीं ठेल!
धरती के आँगन में कैसे धूप-छाँह के खेल!

(२)

जागे कैसे ये गीत, होगई मन की पीर नई।
यह कैसा पैना दर्द लिए
बहती पुरवाई है,
बरखा की मस्ती ने
धरती की धुंध दबाई है,
रिमझिम-सी झरी फुहार, घटा वह सावन की उनई।
होगई मन की पीर नई।

छंदों में प्रवाह अभी कम है। भाषा का गांभीर्य फिर भी सराहनीय है। उपमा, रूपक और प्रतीक-विधान के लिए इन्होंने कुछ वस्तुओं का प्रयोग बड़े मौलिक ढंग से किया है। धनुष, नौका, वंशी, रथ, रंगमञ्च, धाय, सँपेरा और पथ की लीक आदि को इन्होंने एक नई और अनूठी व्याख्या देकर कहीं-कहीं बड़ा चमत्कार उत्पन्न किया है। पर इनके पाठकों को इन्ही के शब्दों में इनसे एक शिकायत है—

अपनी ज्योति स्वयं ही पीकर
रहना कहाँ धर्म है साथी?
अपने अंगों को समेट कर
रखना कहाँ कर्म है साथी?
हरे भरे, सूखे-गीले, ऊबड़-खाबड़ में
जीवन की यह गंध बिखरने दो।

———

राजनारायण बिसारिया

प्रेम के सम्बन्ध में कई प्रकार की धारणाएँ लोक में प्रचलित हैं। पहिली यह कि यह दो आत्माओं का मिलन है। जो दो प्राणी एक दूसरे को प्यार करते हैं वे जन्म-जन्मान्तर से एक दूसरे को प्यार करते आए हैं और जन्म-जन्मान्तर तक एक दूसरे को ऐसे ही प्यार करते रहेंगे। ऐसे प्यार करने वाले यदि इस जीवन में नहीं मिल पाते तो अगले जीवन में अवश्य मिलते हैं। दूसरी यह कि प्यार एक लौकिक भावना है, इसका भी जन्म और विकास होता है और जैसे यह उत्पन्न होती है वैसे ही एक दिन मर भी जाती है। हाँ, अन्य भावनाओं से यह थोड़ी विलक्षण और व्यापक अवश्य है। तीसरी यह कि यह कोई महत्वपूर्ण भावना नहीं है और इसके सम्बन्ध में जो कवियों ने बातें फैलाई हैं वे अतिरंजित और काल्पनिक हैं। वास्तव में वासना का दूसरा नाम ही प्रेम है।

प्रेम के क्षेत्र में श्री राजनारायण बिसारिया थोड़ा आधुनिक दृष्टिकोण रखते है। उन्होंने कई स्थानों पर प्रेम को बंधनविहीन माना है और अपने मन को पुष्ट करने के लिए बिजली और लहर के उदाहरण दिये हैं। उनका कहना है कि बन्धन तो वासना में होता है प्रेम में नहीं। फिर भी इनकी भावना में उच्छृङ्खलता कहीं नहीं पाई जाती। बहुत गहराई से देखें तो इनका मन अयाचित और अजस्र प्यार चाहता है। रूप के मनोमुग्धकारी वर्णन इनमें कहीं-कहीं पाए जाते हैं। मिलन को ये अस्थिर मानते हैं, मन की भावना को स्थायी; यद्यपि इस प्राप्ति को बहुत बड़ी प्राप्ति अभी नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि इनकी कविता में अभी उस ओर का आकर्षण अधिक वेगवान रहा है। इनकी ओर से आत्म-समर्पण जैसी वस्तु का पता नहीं चलता। प्रेम में लोक की मर्यादा और समाज की शक्ति को ये स्वीकार करते हैं और निराशा के पलों में कभी-कभी नियति-

वादी भी बन जाते हैं। इस प्रकार इनके मन और मस्तिष्क में एक प्रकार का संघर्ष चलता रहता है। मन प्रेम के स्थायित्व को चाहता है, बुद्धि उसके बन्धन को स्वीकार करने को तैयार नहीं—

(१)

बँधकर चला न प्यार कभी है।
जिस बादल का कंठ सुहाया,
बिजली ने वह गले लगाया,
एक जलद को ही विद्युत् का
मिला नहीं भुजहार कभी है,
वैसे तो दे दे गलबहियाँ,
डोली लहर पुलिन की छुहियाँ,
पर जब मुड़कर लहर चली तो
रोक न सका कगार कभी है।
बँधकर चला न प्यार कभी है।

(२)

अस्थिर रूप और यौवन से मुझे नहीं कोई ममता है,
कवि अबाध, कवि के जीवन की निर्झर से होती समता है।

(३)

लेकिन इतनी बात कहूँगा,
मैं इसमें संतुष्ट रहूँगा,
कोई यह समझे कि किसी से
मेरा भी कोई नाता है।
परिचय बढ़ता ही जाता है!

(४)

नदी के पार से मुझको बुलाओ मत!
हमारे बीच में विस्तार है जल का
कि तुम गहराइयों को भूल जाओ मत।

जगत करता नदी में दीप अर्पित है,
लहर पर लो हृदय दीपक विसर्जित है।
अगर तुम तक बहा ले जाय जल का क्रम,
इसे निज चम्पई कर में उठा लो तुम।
रची मेंहदी न जिसकी देख मैं पाया
उसी कोमल हथेली से छिपालो तुम।
हवा फिर भी बुझा जाये न कोई भय।
यही काफ़ी कि आंचल से बुझाओ मत।
नदी के पार से मुझको..............।

प्रकृति वर्णन में वर्षा पर रचनाएँ अधिक हैं। कुछ उपमान तो पुराने ही हैं; पर अधिकतर निश्चित रूप से नए हैं और बड़े मधुर एवं व्यंजक बन पड़े हैं। प्रकृति का प्रयोग इन्होंने कहीं-कहीं उद्दीपन की दृष्टि से भी किया है। प्रकृति के मोहक दृश्यों के बीच एक प्रकार के अभाव की अनुभूति ये प्रायः करते रहते हैं। ऋतुओं की विशेषताओं, उनसे संबंधित वस्तुओं और उनके दान की चर्चा तो वैसी ही है जैसी होनी चाहिए; पर अभिव्यक्ति का ढंग अवश्य कुछ निराला है। आप चाहें तो इसे प्रयोग की नवीनता कह सकते हैं—

झूम झमक बादरवा आओ
नई फसल बरसाओ।
चूनर उगें, मिर्जई उगें
उगें घर के धंधे,
मनसुखिया का हँसिया उगे
उगें बुधू के रंदे!
क्यारी क्यारी-ढपली ढोलक
झूमर-झाँझ उगाओ।
क्वाँरी धरती हल से मिलकर
पीले हाथ करा ले,

स्वेद-सनी हर भुजा कुदाली की
राखी बँधवाले !
धड़क न जाय कहीं तिय का जिय
पिय को पास बुलाओ।

श्री बिसारिया व्यापक दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति हैं। इनकी भावना का एक क्षेत्र है गाँव जहाँ वे मजदूरिन, पनिहारिन और ग्रामबधू के जीवन और मन में झाँकते हैं; दूसरा क्षेत्र है आज का सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन जहाँ ये संगठन के लिए युवकों को ललकारते और सम्प्रदायवाद एवं साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी वाणी ऊँची करते हैं। सामूहिक रूप से मनुष्य को महान समझने वालों में ये भी हैं; यद्यपि इन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि इस युग में जीवन के संघर्ष से पिसा व्यक्ति अपनी ईमानदारी को लेकर जीवित रह सके यह कठिन काम है। इन्होंने एक ओर ऐसी आवेशपूर्ण रचनाएँ लिखी हैं जो शक्ति और साहस की परिचायक हैं और दूसरी ओर ऐसी आर्द्र रचनाओं की सृष्टि की है जिनसे जीवन का सूनापन टपकता है। पर इनका वास्तविक हृदय इन दोनों प्रकार की कविताओं के मध्य उन रचनाओं में है जहाँ जीवन के दाह के भीतर इन्होंने मुसिकानों को सँजोया है और परिस्थितियों की आँधी में आशा के दीपक को नहीं बुझाने दिया।

अजितकुमार

उदीयमान कवियों में अजितकुमार बड़े संवेदनशील, स्वच्छ दृष्टि सम्पन्न और प्रतिभाशाली हैं। इनकी कुछ रचनाओं का विषय कवि और उसका कर्म है। अतीत की समस्त प्राणवान काव्य-साधना के प्रशंसक होते हुए भी इनके अपने हृदय का योग नए युग और नई कविता से ही है। इन्होंने आज के सभी कवियों से ऐसे काव्य-दान की आशा की है जिससे हमारी सामूहिक स्वर-साधना लोक का वास्तविक कल्याण कर सके—

गीत जो मैंने रचे हैं
वे सुनाने को बचे हैं!
क्योंकि, नूतन ज़िन्दगी लाने,
नई दुनिया बसाने के लिए,
मेरा अकेला कंठ-स्वर काफ़ी नहीं है।
इसलिए तुम भूलकर वैषम्य सारे
ताल, सुर, लय का नया संबंध जोड़ो!
ओ प्रगति पंथी!
ज़रा अपने क़दम इस ओर मोड़ो!
मेरा साथ दो!
यह दोस्ती का हाथ लो!
फिर
मैं तुम्हारे गीत गाऊँ और तुम मेरे
कि जिससे रात जल्दी कट सके,
यह रास्ता कुछ घट सके।
हम जानते हैं—
विहगादल तक साथ देंगे
भोर होते ही, उजेरे, मुँह अँधेरे।

अपनी रचनाओं में अजितकुमार ने अभी काव्य की भूमिका ही प्रस्तुत की है। विचार के क्षेत्र में ये द्विविधा की स्थिति में हैं—यही कि बेचारा नया लेखक क्या करे! अतः आत्म-निर्णय का समय इनके काव्य-जीवन में अभी नहीं आया। इनके सामने अभी तो समस्याएँ ही समस्याएँ और प्रश्न ही प्रश्न हैं जिनका अंतिम समाधान और उत्तर इन्हें नहीं मिला। लेकिन नए युग की नई मानसिक और बौद्धिक उलझनों को सुलझाकर अपना पथ चुनने की आशा इतनी जल्दी हम किसी नए कवि से कर भी तो नहीं सकते। इतना ही क्या कम है कि इन्होंने युग-चेतना में नई लहरियाँ उठाई हैं—

वाह भई वाह, क्या खूब इमारतें हैं!
फ़्लैट, बँगले, मैन्शन, कॉटेज सुहावने,
पोर्टिको, बारजे, बग़ीचे लुभावने,
सब पैसे का जादू है—
हल्के स्वरों में बातें करते हुए स्त्री पुरुष,
वाह री बेफिक्री। धन-दौलत भी क्या चीज़ है।
रेसकोर्स, होटल, रेस्टोरॉं, मार्केटिंग:
पैसे के लिए कैसे उन्मुक्त, खुले द्वार हैं?
इधर आए, उधर जाए,
कितना रोमांटिक है!
क्या करे नया लेखक!
पूंजी की, महलों की, सट्टे की प्रशस्ति करे?
बदले में सिल्क का कुरता, शोलापुरी धोती पहन
खुद भी चमक दमक भरी सड़कों पर मौज करे?
सजे बजे ड्राइंग-रूमों में कविता बनाए,
गुनगुनाए, गीत गाए?
नया लेखक क्या करे?
खुद भी हो जाय वह वैसा ही दीन-हीन,

क्षुब्ध, असंस्कृत, मलीन,
जैसे वे अनगिन खेतिहर, असंख्य मज़दूर
जिन्हें इस व्यवस्था ने कर दिया मजबूर,
नए युग की संभावनाओं से अपरिचित
गंदे, नीच, घृणित, कुत्सित !
ऐसों के साथ नया लेखक मिले जुले ?
फूस की झोपड़ियों में जिन्दगी बसर करे ?
इनके सुख-दुख को अपना करके समझे,
उनके लिए जान की बाज़ी लगा दे !
जेल जाए, कोड़े खाए, ठोकरें खाता फिरे ?
मज़लूमों की क्रांति की योजनाएं बनाए ?
हवा में विद्रोह भरने वाले गीत गाए ?
नया लेखक क्या करे बेचारा ?

कुछ रचनाएँ कविता की सृजन-प्रक्रिया से भी संबंध रखती है। कहीं-कहीं इन्होंने परंपरागत प्राचीन उपमानों के प्रति आज के कवि की अरुचि प्रकट करते हुए विलक्षण प्रयोगों की बात भी उठाई है। लेकिन नए होने पर भी ऐसे उपमान प्रभावशाली, आकर्षक या बहुत उपयुक्त नहीं प्रतीत होते—

चाँदनी चंदन सदृश
हम क्यों लिखें ?
मुख हमें कमलों सरीखे क्यों दिखें ?
हम लिखेंगे
चाँदनी उस रुपये सी है कि जिसमें
चमक है पर खनक गायब है।
हम कहेंगे जोर से
मुँह घर-अजायब है
जहाँ पर बे-तुके, अनमोल, ज़िंदा और मुर्दा भाव रहते हैं।

प्यार के कई पहलू इनकी रचनाओं में पाए जाते हैं। उनमें से कुछ तो चिर-परिचित हैं जैसे यदि हम किसी को प्यार करते हैं तो उसकी स्मृति को बड़े से बड़े सुख के पल में भी भुला नहीं पाते या प्रेमियों के दूर होने पर भी प्यार की भावना में कोई कमी नहीं आती। एकाध स्थापना नई और शुद्ध मनोवैज्ञानिक ढंग की है जैसे एक ही प्रणयिनी से कई प्रकार के संबंध वाली जिनमें से कुछ एक दूसरे के विरोधी भी प्रतीत हो सकते हैं। इनकी सबसे मनोरंजक स्थापना यह है कि प्यार अपने ही अंतर की एक भावना है जिसका बाह्य जगत में कहीं अस्तित्व नहीं होता।

फिर एक दिवस आया; जब यह मालूम हुआ,
'तुम' तो कोई भी नहीं, कहीं भी नहीं रहीं।

अजितकुमार ने मानसिक प्रतिक्रियाओं और हलचलों के शब्द-चित्र बड़ी पटुता और स्पष्टता से अंकित किए हैं। कहीं-कहीं तो झूठ और अज्ञान को जैसे चीर कर रख दिया है। जहाँ इन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया है वहाँ इनकी रचनाओं में एक प्रकार की अतिरिक्त चमक आ गई है।

अजितकुमार का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है।

अविराम

एक हज़ार वर्ष से हिंदी-काव्य की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है। विभिन्न स्रोतों से सिमिट कर इतना अपार और अगाध जल इसके तटों में समा गया है कि जहाँ हम खड़े हैं वहाँ से पीछे मुड़ कर देखने से दृष्टि चकित-थकित रह जाती है। चंद विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर तुलसी, देव बिहारी, पद्माकर घनानंद, मीरां रसखान, भूषण लाल, हरिश्चंद्र रत्नाकर, मैथिलीशरण हरिऔध, प्रसाद निराला, पंत महादेवी, दिनकर बच्चन आदि का काव्य लौकिकता-अलौकिकता, ओज-कोमलता, माधुर्य-गंभीरता में किसी देश के काव्य के सामने हीन नहीं ठहरेगा। नयी कविता इसी धारा में नया जल भर कर उसे नवीन गति प्रदान कर रही है।

इस अवधि में हमारी कविता दो बार बहुत ऊँची उठ जाती है—पहली बार भक्तिकाल में, दूसरी बार छायावाद-युग में। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इनकी तुलना में वीरगाथाकाल, रीतिकाल, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और उत्तर-छायावाद-काल कुछ नहीं हैं। नया युग पिछले युगों की कोटि में ही आयेगा। निष्पक्ष भाव से इस युग का काव्य न वैसा समृद्ध है जैसा भक्तिकाल या छायावाद-युग का और न इसमें वैसे कवि ही उत्पन्न हुए जैसे इन युगों में। लेकिन तुलसी और प्रसाद जैसे महाकवि प्रयत्न करने पर भी प्रत्येक युग में उत्पन्न नहीं हो सकते। उनका आविर्भाव तो शताब्दियों पश्चात् कभी-कभी होता है।

एक बात नहीं भुला देनी चाहिए। कोई बहुत बड़ा कवि अभी उत्पन्न हो भी नहीं सकता। चंदबरदाई से लेकर बच्चन तक हमारे सभी कवि प्राचीन मान्यताओं के उपासक रहे हैं। इनमें से तुलसी और प्रसाद भारतीय जीवन, संस्कृति और दर्शन के महाव्याख्याता बने। मान्यताओं का वह प्राचीन संसार अब ध्वस्त हो रहा है और एक नया संसार धीरे-धीरे

निर्माण की डाँवाडोल स्थिति में है। परिणाम क्या होगा, कोई नहीं जानता। महाप्रलय भी हो सकती है, नयी सृष्टि का स्वर्ग भी यहाँ बस सकता है। पर नये कलाकारों ने ज्ञान और भक्ति की प्राचीन परंपरा, प्रेम की रूढ़ मान्यताओं एवं पौराणिक महापुरुषों के स्थान पर मार्क्स-डारविन-फ्रायड में अपना विश्वास प्रकट करना प्रारंभ कर दिया है। ऐसी दशा में जब कि प्राचीन मान्यताएँ नष्ट हो चली हैं और नई मान्यताएँ स्थिर नहीं हो पाईं, यह कठिन ही प्रतीत होता है कि कोई कवि नवीन जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा करके नई संस्कृति का नया संदेश शीघ्र दे सके। संभव है इस शताब्दी के अंत तक कोई बड़ा कवि उत्पन्न हो।

यह कल्पना की जा सकती है कि भविष्य का कवि तीनों धाराओं की विशेषताओं को अपने में आत्मसात् करके सबसे आगे बढ़ जाय। उसके काव्य में मार्क्सवादी ढंग की सामूहिक-कल्याण की भावना भी हो सकती है और मन की भावनाओं का वैयक्तिक ढंग का चित्रण भी। इसके अतिरिक्त नये युग की नयी समस्याएँ भी उसकी चेतना का अंग बन सकती हैं। वह चाहे तो मुक्त छंद, लंबी कविताएँ और गीत समान अनुराग और अधिकार के साथ लिख सकता है। फिर भी अच्छा यह हो कि प्रत्येक कवि अपने विश्वास के सहारे जीवित रहे। किसी वाद से संबंधित रहने में कोई हानि नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि साहित्य के व्यापक हित को ध्यान में रख कर काम किया जाय।

कवि

कवि	जन्म काल
अज्ञेय	१९११
शमशेरबहादुर सिंह	१९११
नागार्जुन	१९११
केदारनाथ अग्रवाल	१९११
रामविलास शर्मा	१९१२
तारा पांडेय	१९१४
विद्यावती कोकिल	१९१४
भवानीप्रसाद मिश्र	१९१४
प्रभुदयाल अग्निहोत्री	१९१४
सुमित्राकुमारी सिनहा	१९१५
शकुंतला सिरोठिया	१९१५
शिवमंगल सिंह 'सुमन'	१९१६
शंभुनाथ सिंह	१९१७
त्रिलोचन	१९१७
गजानन माधव मुक्तिबोध	१९१७
गिरिजाकुमार माथुर	१९१८
हंसकुमार तिवारी	१९१८
नेमिचंद जैन	१९१८
भारतभूषण अग्रवाल	१९१९
सच्चिदानंद तिवारी	१९१९
गोपीकृष्ण गोपेश	१९२०
श्रीपाल सिंह 'क्षेम'	१९२२

चंद्रमुखी ओझा 'सुधा'	१९२३
देवनाथ पांडेय 'रसाल'	१९२३
गुलाब खंडेलवाल	१९२३
नरेशकुमार मेहता	१९२४
आलूरी बैरागी चौधरी	१९२४
गिरिधर गोपाल	१९२५
शांति मेहरोत्रा	१९२६
धर्मवीर भारती	१९२६
रमानाथ अवस्थी	१९२६
जगदीश गुप्त	१९२६
शिवचद्र नागर	१९२६
महेन्द्र भटनागर	१९२६
नर्मदेश्वर उपाध्याय	१९२६
नामवर सिंह	१९२७
रमा सिंह	१९२७
राजनारायण बिसारिया	१९२९
अजितकुमार	१९३३